अध्याय-1

1.1 (अ) ब्रज का परिचय एवं क्षेत्र निर्धारण

❖ 'ब्रज' शब्द व्युत्पत्ति एवं

❖ नामकरण

'ब्रज' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'ब्रज' शब्द से हुई ऐसा माना जाता है। संस्कृत सभी भाषाओं की जननी है, संस्कृत के तत्सम एवं तद्भव शब्द भंडार के कारण ही हिन्दी भाषा सम्पूर्ण हो सकी है, ऐसा कहना अधिक उचित रहेगा। 'ब्रज' शब्द वैदिक युग में गायों के प्रकोष्ठ या पशु के ठहराने के स्थान के अर्थ में प्रयुक्त हुआ। 'ब्रज' शब्द की उत्पत्ति के विषय में विविध बुद्धिमनीषियों ने अपने-अपने मत दिए हैं। 'ब्रज' शब्द की उत्पत्ति का उल्लेख सर्वप्रथम ऋग्वेद में प्राप्त हुआ जहां इसका अर्थ गायों के बाड़े के रूप में प्राप्त हुआ। धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार "यह शब्द संस्कृत धातु 'ब्रज्' जाना से बना है। ब्रज का सर्वप्रथम प्रयोग ऋग्वेद संहिता जैसे [ऋग्वेद मंत्र २ सू. ३८, मं. ५. सू.३५. मं.४. मं.१०, सू.४ में २ इत्यादि] में मिलता है परंतु वह शब्द ढोरों के 'चारागाह' या बाड़े अथवा पशु-समूह के अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। संहिताओं तथा इतिहास ग्रंथ रामायण, महाभारत तक में यह शब्द देशवाचक नहीं हो पाया था"[i] 'ब्रज' शब्द का एक अर्थ गतिशीलता भी प्राप्त होता है। 'ब्रज' शब्द की उत्पत्ति एवं नामकरण के विषय में डॉ. प्रभुदयाल मित्तल ने लिखा है कि – "व्रजन्ती गावों यसिमिन्नति ब्रज" जहां गायें नित चलती अथवा चरती हैं, वह स्थान भी 'ब्रज' कहा गया है।"[ii] गायों के खिरक,बाड़े, या प्रकोष्ठ के रूप

में उपयोग में लिया जानेवाला शब्द कालांतर में ब्रज क्षेत्र के रूप में जाना गया। डॉ. सत्येंद्र ने क्षेत्र की दृष्टि से ब्रज शब्द के विषय में मत है – "सर हेनरी एम, इलियट, के. सी. बी. के आधार पर ब्रज मथुरा के चारों ओर बसा चौरासी कोस है। जब महादेव श्री कृष्ण की गायें चुराकर ले गए तो लीलामय भगवान ने नयी गायें बना ली और वे ठीक इसी सीमा में चरती फिरी तभी "ब्रजन्ति गावो यस्मिन्निति ब्रज" यह ब्रज कहलाने लगा।"[iii] "ब्रज नामकरण से संबंधित उक्त भावनाओं का भाषा विज्ञान की दृष्टि से कोई प्रमाणिक आधार नहीं है। अत: उनमें से किसी एक को स्वीकार करना संभव नहीं है। वेदों से लेकर पुराणों तक गौचर भूमि हो चाहे गोप वस्ती हो भागवतकार की दृष्टि में गोष्ठ, गोकुल और ब्रज समानार्थक शब्द हैं।"[iv]

वैदिक युगीन ग्रंथों,शास्त्रों संस्कृत लिखित प्राचीन ग्रन्थों में चाहे महाभारत, रामचरितमानस हो उपयुक्त में 'ब्रज' शब्द अर्थ गायों के प्रकोष्ठ, गौशाला, गौचर भूमि के रूप में प्रयुक्त हुआ है। हिन्दी भाषा साहित्य में ब्रज शब्द का चलन काफी देरी से हुआ वैदिक युग में प्रामाणिक रूप से अपना अस्तित्व बना चुका था। वेदों में ब्रज के विभिन्न अर्थ प्राप्त हुए कलान्तर में यह शब्द ब्रज क्षेत्र के रूप में जाना गया ब्रज क्षेत्र याने भारत देश के उत्तरप्रदेश का एक जनपद जिसे ब्रज मण्डल, मथुरा मण्डल, ब्रज को चौरासी कोस भी कहा जाता है। इस विषय में धींरेंद्र वर्मा ने कहा है कि "मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में तद्भव रूप 'ब्रज' अथवा 'बृज' निश्चय ही मथुरा के चारों ओर के प्रदेश के अर्थ में मिलता है।"[v]

ब्रज नामकरण के विषय में विविध साहित्यकारों ने अपने-अपने मत स्थापित किए किन्तु कहीं भी सहमत दिखाई नहीं पड़ते। प्रभुदयाल मित्तल के अनुसार- "मथुरा और उसके निकटवर्ती भू-भाग, प्रागैतिहासिक काल से ही अपने सघन वनों विस्तृत चारागाहों, सुंदर गोष्ठों और दुधारू गायों के लिए प्रसिद्ध रहा है।"[vi] ब्रज स्थल या शब्द का संबंध भगवान श्रीकृष्ण से है और श्रीकृष्ण का संबंध गायों से इस युक्ति पर अमरकोश में 'गोष्ठाध्वनिवहा ब्रज' कहा गया

है अर्थात् ब्रज एवं गोष्ठ (गाय) एक दूजे के पूरक है। कुछ विद्वानों का मानना है कि ब्रज में भगवान बौद्ध के आगमन से यह स्थल समयान्तर में विरज या ब्रज नाम से प्रख्यात हुआ होगा। भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से ब्रज क्षेत्र के नामकरण के संदर्भ में उक्त संभावनाओं का कोई प्रामाणिक व ठोस आधार न होने के कारण इनमें से किसी भी एक को आधार मानकर नामकरण करना उचित नहीं है। संशोधनों एवं तथ्यों के आधार पर ब्रज क्षेत्र से 'ब्रज', 'बृज', 'बिरज', 'विरंजा' सभी शब्द उपजे हैं। यही लीलमय श्रीकृष्ण की पावन भूमि है। यहाँ बंसीधारी श्रीकृष्ण की भक्ति, श्रद्धालूओं के लौकिक भाव, अटूट विश्वास की भूमि है। जहाँ गायों का नित्य चलना ग्वाल बाल की बंसी की धुन पर आश्रित था। यह पावन भूमि आज भी भारत के अन्य देवस्थानों के साथ एक महत्वपूर्ण देवस्थल है।

❖ **ब्रज की भौगोलिक सीमा एवं क्षेत्र निर्धारण**

ब्रज प्रदेश का प्राचीन नाम शूरसेन प्रदेश था, ब्रज क्षेत्र के अस्तित्त्व में आने तक की यात्रा को विभिन्न आचार्यों ने अनुसंधान कई आधार पर दिया हैं, इस संदर्भ में प्रभुदयाल मित्तल का कथन है – "आजकल का मथुरा नगर सहित भू-भाग जो श्री कृष्ण के जन्म और विविध लीलाओं से संबंधित है। ब्रज कहलाता है इस प्रकार ब्रज वर्तमान मथुरा मण्डल और प्राचीन शूरसेन प्रदेश का अपर नाम और उसका एक छोटा रूप है। इसमें मथुरा, वृंदावन, गोवर्धन, गोकुल, महावन, बलदेव, नंदगांव, बरसाना, डींग और कामवन आदि श्री कृष्ण के सभी लीलास्थल सम्मिलित है। इस ब्रज को चौरासी कोस माना जाता है।"[vii] ब्रज नामकरण पश्चात अब ब्रज क्षेत्र एवं सीमा निर्धारण पर दृष्टि करते हैं। ब्रज के सीमा व क्षेत्रों के विषय में विविध विद्वानों ने अनुसंधानों के अनुसार निष्कर्ष दिए हैं। वैदिक युग में प्रयुक्त ब्रज शब्द समय यात्रा के बाद क्षेत्रवाची हो गया। मथुरा-मण्डल के विषय में श्रीमान ग्राउस तथा इलियट ने अपने ग्रन्थों में प्रस्तुत दोहे के आधार पर ब्रज-मण्डल का सीमा विस्तार माना है। डॉ. सत्येंद्र ने अपने ग्रंथ में युक्त शोध का विवरण इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि-

"इत बरहद उत सोनहद उत सूरसेन कौ गाँव"

विर्ज ५ चौरासी कोस में मथुरा मंडिल "माँह।"[viii]

उपयुक्त कथन के अनुसार सीमा निर्धारण की दृष्टि से ब्रज-मण्डल, मथुरा- मण्डल, की एक सीमा या हद 'बर' है दूसरी हद सोन नदी और तीसरी शूरसेन का प्रदेश। 'बरहद' यह अलीगढ़ जनपद का एक छोटा सा गाँव है, अलीगढ़ का प्राचीन नाम 'कोर' है जिसका शाब्दिक अर्थ ब्रज का किनारा है। चारों दिशा में ब्रज क्षेत्र वृत के समान है यही इसी गोलाकार को चौरासी कोस के नाम से अभिहित किया गया है। इस विषय में एक किवदंती यह भी है कि शूरसेन प्रदेश सुरसेन का गाँव है। जिसे सूरजपुर नाम से भी जाना गया।

डॉ. सत्येंद्र ने ग्राउस के संदर्भ में नारायण भट्ट के इस श्लोक को ब्रज का सीमा विस्तार माना है –

“पूर्व हास्यवने नाम पश्चिम स्योपहारिकम।

दक्षिणे जन्हुसंज्ञाकं भुवानाख्या तिथोतीरे।।”[ix]

अर्थात् पूर्व दिशा में स्थित हास्यवन यह अलीगढ़ का ‘बरहद’ है, तो पश्चिम की ओर स्थित गुड़गाँव सोननदी का उपहार वन का किनारा है। दक्षिण दिशा में शूरसेन प्रदेश का जहनुवन (बटेश्वर) है तो वहीं उत्तर दिशा में शेरगढ़ परगना के भुवनवन या भुवणवन के निकटवर्ती स्थान को उपयुक्त श्लोक में चारों दिशा में स्थित चौरासी कोस यह चौरासी गाँव का समूह के रुप में दर्शाया गया है। ब्रज के सीमा एवं क्षेत्र के लिए विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने शोध के अनुरूप सीमा निर्धारण किया है।

भारतीय भाषा सर्वेक्षण के आधार पर ब्रज की सीमा एवं क्षेत्र निर्धारण पर के विषय में जॉर्ज ग्रियर्सन ने कुछ इस प्रकार किया है- “ब्रजभाषा का मुख्य क्षेत्र केन्द्रीय दोआब तथा इससे सटे हुए दिल्ली के दक्षिणी भाग से लेकर इटावा तक का प्रदेश है इसका मुख्य केंद्र मथुरा शहर के चारों ओर है। यमुना के दक्षिण तथा पश्चिम में गुड़गाँव, भरतपुर तथा करौली राज्य के उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र में बोली जाती हैं। पश्चिम और दक्षिण में यह धीरे-धीरे राजधानी में अंतर्भुक्त हो जाती है।”[x] ब्रज मण्डल के चारों ओर फैले वृत को चौरासी कोस कहा गया है ब्रज क्षेत्रों की सीमा आस-पास के राज्यों तक फैली हैं। समयानुसार होते परिवर्तन का प्रभाव ब्रज के क्षेत्रों पर भी हुआ इसलिए कुछ विद्वानों ने प्राचीन भाषा सर्वेक्षण को खंडित कर नवीन संशोधनों के आधार पर नए सीमा निर्धारण को पुन: स्थापित किया नवीन भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से डॉ. धीरेंद्र वर्मा ने लिखा है की- “उत्तर प्रदेश के मथुरा, अलीगढ़, आगरा, बुलंदशहर, एटा, मैनपुरी, बदायूँ तथा बरेली के जिले पंजाब के गुड़गाँव जिले के पूर्वी पट्टी, राजस्थान में भरतपुर, धौलपुर, करौली तथा जयपुर के पूर्वी भाग मध्यभारत में ग्वालियर का पश्चिमी भाग क्योंकि ग्रियर्सन का यह मत

लेखक को मान्य नहीं है कि कन्नौजी स्वतंत्र बोली है। (७५) इसलिए उत्तर प्रदेश के पीलीभीत, शाहजहाँपुर, फर्रुखाबाद, हरदोई, इटावा, और कानपुर के जिले भी ब्रज प्रदेश में सम्मिलित कर लिए गए हैं।"[xi] इसी क्रम में भगवान सहाय पचौरी का मत है- "यदि मथुरा को केंद्र माना जाए तो दक्षिण में ब्रजभाषा आगरा, भरतपुर, के अधिकांश भाग धौलपुर, करौली, ग्वालियर के पश्चिमी भाग तथा जयपुर के पूर्वी भाग में बोली जाती है। उत्तर में इसका विस्तार गुड़गाँव के पूर्व भाग तक है। उत्तर-पूर्वी दोआब में यह बुलंदशहर, अलीगढ़, एटा, मैनपुरी, तथा गंगा के उस पार बदायूँ, बरेली तथा नैनीताल की तराई में बोली जाती है। इस प्रकार इसका विस्तार दक्षिण-पश्चिम से उत्तर पूर्व की ओर जानेवाले नियमित आकार के क्षेत्र में है। यह भूमि भाग सामान्यत: 90 मील चौड़ा तथा 300 मील लंबा है इसका क्षेत्रफल मोटे रूप से 27000 वर्ग मील है।"[xii] प्रभुदयाल मित्तल के अनुसार- "ब्रजभाषा का निजीक्षेत्र पश्चिमी उत्तरप्रदेश स्थित मथुरा, आगरा, अलीगढ़, एटा, जिलों में तथा मैनपुरी जिला के अधिकांश और बुलंदशहर जिला के कुछ भाग में, राजस्थान स्थित भरतपुर, धौलपुर और करौली क्षेत्रों के कुछ भाग में है तथा पंजाब स्थित गुड़गाँव जिला के कुछ भाग में है। इसके चारों ओर मिश्रित ब्रजभाषा क्षेत्र है। इसमें उत्तर में खड़ी बोली पूर्व में कन्नौजी, दक्षिण में बुंदेलखंडी और पश्चिम में राजस्थानी बोलियों से ब्रजभाषा का मिश्रित रूप मिलता है।"[xiii]

ब्रज क्षेत्र की परिकल्पना को विद्वानों ने चौरासी कोस का एक वृत सरीखा बतलाया किंतु आज के आधुनिक युग में यह क्षेत्र वृत नहीं रहा है। ब्रज भाषा 1 करोड़ 23 लाख जनता के द्वारा बोली व व्यवहार में लायी जाती है तथा इसका अनुमानत: क्षेत्र 38000 वर्ग मील माना गया है। प्राप्त मतों एवं शोध निष्कर्ष के आधार से यह कहा जा सकता है कि मथुरा ब्रज क्षेत्र का केंद्र है। इसके चारों ओर के वृत को ब्रज-मण्डल एवं मथुरा-मण्डल के नाम से जाना जाता है। वर्तमान समय में ब्रज क्षेत्र के अंतर्गत मथुरा, अलीगढ़, आगरा, बरेली, बदायूं, पीलीभीत, गुड़गाँव, भरतपुर, धौलपुर, करौली, बुलंदशहर, कन्नौज, एटा, कासगंज आदि का समावेश होता है। युक्त तथ्यों के आधार पर ब्रज-मण्डल के वृत की परिकल्पना सटीक है।

❖ **ब्रज भाषा का विकास : संक्षिप्त परिचय**

ब्रज यह मूलरूप से संस्कृत से प्रयुक्त शब्द है जिसका अर्थ जाना, गतिशीलता, गायों के खिरक, बाड़े आदि प्राप्त हुआ। कुछ समय अंतराल बाद यह शब्द ब्रज क्षेत्र से निकालकर भाषा के रूप में प्रख्यात हुआ। भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से ब्रज भाषा का उदय शौरसेनी अपभ्रंश से स्वीकार किया गया है।

इस संदर्भ में सत्येन्द्र ने ब्रजभाषा का विकास क्रम इस प्रकार किया है-

"ब्रज का विकास उत्तर वैदिक > शूरसेन पांचाल की पाली > शौरसेनी प्राकृत > शौरसेनी अपभ्रंश के द्वारा हुआ।"[xiv]

1000 ईसवीं के लगभग ब्रज भाषा के आरंभिक रूप की झलक प्राप्त होती है।"जनपद या प्रदेश के अर्थ में ब्रज का व्यापक प्रयोग ईसवी चौदहवीं शती के बाद प्रारंभ हुआ। उस समय मथुरा प्रदेश में कृष्ण भक्ति की एक नई लहर उठी जिसे जनसाधारण तक पहुँचाने के लिए यहाँ की शौरसेनी प्राकृत से एक कोमल-कान्त भाषा का अविर्भाव हुआ।"[xv] हिन्दी भाषा साहित्य में ब्रज शब्द का प्रयोग काफी देरी से हुआ। विकास के पथ पर ब्रजभाषा की यात्रा 16 वीं शती से प्रारंभ हुई। ब्रजभाषा के क्षेत्रों के निर्धारण व भौगोलिक सीमा में समयगत परिवर्तन आए जिसका प्रभाव ब्रजभाषा पर भी हुआ है। ब्रज भाषा में अन्य प्रादेशिक बोलियाँ एवं भाषाओं के शब्द मिश्रित होते गए और ब्रज भाषा का विस्तार बढ़ता चला गया जिससे विद्वानों ने ब्रज भाषा से उत्पन्न उपबोलियों को डांगी, भुक्सा, जाटोबाटी नाम से अभिहित किया। ब्रज भाषा को अंतर्वेदी नाम से भी पुकारा गया है।भाषागत विशेषताओं में ब्रजभाषा ओंकार बहुला है एकवचन पुल्लिंग संज्ञा और विशेषण प्राय: ओकारांत होता है उदाहरण स्वरूप सांवरौ, कारौ, मांझौ आदि।

ब्रजभाषा जहां 16वीं शती तक अपनी जड़े जमा चुकी थी वहीं 'अष्टछाप' के अनुयायी कवियों और भक्तों ने ब्रजभाषा को मध्यदेश की सर्वोत्कृष्ट साहित्यिक भाषा के रूप में प्रख्यात कर दिया था। ब्रज भाषा की साहित्यिक यात्रा संभवत:15वीं शताब्दी के उतरार्द्ध से हुआ। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है कि –"पश्चिमी हिन्दी बोलने वाले सारे प्रदेशों गीतों की भाषा ब्रज ही थी। दिल्ली के आस-पास भी ब्रज भाषा में ही गाये जाते थे हम खुसरो (संवत 1340) के गीतों में दिखा आए हैं। कबीर (संवत 1560) के प्रसंग में कहा जा चुका है कि उनकी साखी की भाषा तो सधुक्कड़ी है पर पदों की भाषा काव्य में प्रचलित ब्रज भाषा है।"[xvi] इसी क्रम में धीरेन्द्र वर्मा ने कहा है- "निश्चित रूप से 'ब्रज' का उल्लेख 18 वीं शताब्दी पूर्व नहीं मिलता राजपूताना में काव्य की भाषा होने के कारण 'ब्रजभाषा' पिंगल कहलायी। उर्दू लेखक ब्रज भाषा को 'भाखा' कह कर पुकारते थे।"[xvii] हिन्दी साहित्येतिहास में स्वर्णयुग कहे जानेवाले मध्यकाल की प्रिय भाषा ब्रज रही। ब्रजभाषा समग्र भारत में प्रचारित-प्रसारित करने का श्रेय अष्टछाप के कवियों एवं संतों को जाता है। वल्लभाचार्य ने 1565 ई. अष्टछाप की स्थापना की एवं उनके पुत्र विट्ठलनाथ ने पिता के सहयोग से आठ भक्तिकालीन कवियों का एक समूह बनाया जिसे अष्टछाप कि संज्ञा से समिहित किया गया। यह अष्टछापी कवि भक्ति में लीन भगवान श्रीकृष्ण की लीलाओं का गुणगान कर भक्तिमय वातावरण उत्पन्न करते थे। इन्हीं कीर्तनों के कारण ब्रजभाषा का विस्तार व्यापक होता गया है। अष्टछाप के अंतर्गत सूरदास, मलुकदास, परमानंददास, कुभन्दास, गोविंद स्वामी, छितस्वामी और चतुर्भुजदास आदि कवियों का समावेश होता है। इसके अतिरिक्त ब्रज भाषा में लिखित एवं मौखिक गेयात्मक काव्यों का सागर है।

विक्रमी शती 16वीं से 18वीं शती तक की समयावधि में ब्रजभाषा समग्र राष्ट्र पर राज कर रही थी। साहित्यिक दृष्टि से ब्रज भाषा हिन्दी गद्य-पद्य दोनों की सर्वोत्कृष्ट भाषा रही है। इस विषय में डॉ नगेंद्र ने लिखा है- "ब्रजभाषा अपने समय में अत्यंत व्यापक भाषा रही है उसका विकास क्षेत्र ब्रज का चौरासी कोस तक तो कहने भर का ही था उसका प्रसार इतना व्यापक था

के आस-पास की अनेक बोलियों का अस्तित्व लोप ही हो गया।"[xviii] "मध्ययुग के उत्तर-भारत के साहित्यिक इतिहास में ब्रज भाषा का स्थान सबको विदित है। ऐसा जचता है कि अपनी बेटी ब्रज भाषा में शौरसेनी अपभ्रंश को नवीन कलेवर मिला नए आयुकाल को उसने प्राप्त कर लिया । उत्तर बंगाल से लेकर महाराष्ट्र और पश्चिम पंजाब तक ब्रजभाषा कविता,संगीत और राधाकृष्ण विषयक वैष्णव शास्त्र ग्रन्थों की भाषा बनी ।"[xix]

विद्यापती से लेकर भारतेंदु युग तक ब्रजभाषा की विकास यात्रा में विविध लेखकों, कवियों, नाट्यकारों ने अपना- अपना योगदान दिया । ब्रजभाषा साहित्य के सागर में न जाने कितने रत्न छिपे हैं । ब्रजभाषा की व्यापकता का परिचय कबीर के दोहों में समाजसुधारक स्वर से रुढ़िवादी समाज को फटकार लगाना आज भी उतना ही प्रभावशाली है, विद्यापति की पदावली, भूषण के काव्यों में वर्णित शौर्य की गाथा देशभक्ति के प्रति प्रेरित करती है, बिहारी का नायिका वर्णन चमत्कार एवं सौंदर्य से परिपूर्ण नायिका आँखों के सामने सजीव हो उठती है, चर्चित व प्रख्यात कवियों में रीतिकालीन कवि मतिराम, देव, घनानन्द, भारतेन्दु, गया प्रसाद शुक्ल सनेही आदि साहित्यकारों का ब्रजभाषा की सफल साहित्यिक यात्रा में अतुलनीय योगदान रहा है ।

उपर्युक्त विवेचना से ब्रज भाषा की हित्य तक की यात्रा और व्यापकता का महत्व स्पष्ट होता है । कोमल कान्त प्रभावशाली ब्रज भाषा ने साहित्य सृजना को अपने माधुर्य रस एवं समरसता से समग्र भारत को आप्लावित कर दिया था। 16वीं शती से लेकर 19वीं शती के उतरार्द्ध तक ब्रज भाषा ने सर्वप्रिय भाषा के रूप में भारतवर्ष पर राज किया । ब्रज भाषा को उत्तर पथ या यूं कहे की समग्र राष्ट्र की सर्वप्रिय भाषा की संज्ञा से सज्जित करने का श्रेय इन महानुभावों को जाता है जिनमें सूरदास, नंददास, गोविंद स्वामी, छितस्वामी, हितहरिवंश, रसखान, ध्रुवदास, बिहारीलाल, देव, भारतेन्दु हरिश्चंद्र, जगन्नाथ रत्नाकार, सत्यनारायण आदि का नाम आदर से लिया जाता है । आधुनिक युग में शुरुआती रचनाओं में ब्रज भाषा गद्य की कृतियाँ प्राप्त हुई किंतु वर्तमान समय में ब्रज भाषा न रहकर क्षेत्रीय बोली मात्र है ।

1.2(ब) ब्रज के ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और धार्मिक परिदृश्य

ब्रज क्षेत्र के ऐतिहासिक परिदृश्य में ब्रजभूमि के विभिन्न पक्षों को उजागर करने का कार्य किया गया है। ब्रज भूमि के इतिहास में मथुरा नगरी का उल्लेख अत्यंत आवश्यक है इतिहास कि महत्वपूर्ण घटनाओं का विवरण मथुरा से प्राप्त होता है। ब्रज के प्राचीनतम् इतिहास पर दृष्टि करने पर ज्ञात होता है कि आध्यात्मिक पुस्तकों, पुराणों में ब्रज का विवरण मिलता है। वाल्मीकि कृत रामायण एवं वेदव्यास द्वारा रचित महाभारत में उक्त स्थानों में मथुरा एवं शूरसेन जनपद का उल्लेख हुआ है। "प्राचीन वैदिक साहित्य में मथुरा या शूरसेन जनपद का उल्लेख नहीं मिलते परंतु परवर्ती वैदिक साहित्य जैसे राजवंशावलियों एवं गुरु-शिष्य परंपरा संबंधी जो वर्णन मिलते हैं उनसे ब्रज के प्राचीनतम् इतिहास यतिकचित् प्रकाश पड़ता है।"[xx] वैदिक युगीन ग्रन्थों में शूरसेन जनपद श्री कृष्ण के संबंध में प्राप्त होता है। प्राचीन ग्रंथावलियों में भगवान श्री कृष्ण के चरित्र-चित्रण जिस प्रकार किया है उससे बाल कृष्ण, मित्र, प्रेमी, पति से लेकर महाभारत के सारथी तक जीवन की प्रत्येक अवस्था का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है।

शूरसेन प्रदेश की राजनैतिक समसमायिक प्रवृत्तियों पर भी प्रकाश पड़ा है। शूरसेन प्रदेश में धर्म, दर्शन, युद्ध, कलास्थापत्य एवं संस्कृति आदि में विभिन्न शासकों के अवशेष प्राप्त हुए है। ब्रज भूमि पर बौद्ध एवं जैन साहित्य का उल्लेख मिलता है। शूरसेन प्रदेश में लगभग 200 ई। से 550 ई. तक यहाँ नाग तथा गुप्त शासकों ने राज किया इसके अतिरिक्त मौखरी, वर्धन, गुर्जर, मैत्रक, कचकलचुरि आदि। सभी राजवंशों के शासनकाल मूर्तिकला, सिक्के, सोने-चांदी आभूषण, आदि का वर्चस्व मथुरा नगरी में भी रहा है। मानो आज भी इस क्षेत्र में इतिहास कण-कण में बोलता सा प्रतीत होता है। इस विषय में कृष्णदेव वाजपयी का कथन है- "ब्रज प्रदेश में ई.पू. चौथी शती से लेकर ई. बारहवीं शती तक के जो अवशेष मिलते हैं। उनसे मौर्य, शुंग, कुषाण, नाग, गुप्त, गुर्जर, प्रतीहार तथा गाहड़वाल शासन के समय का ब्रज का इतिहास जानने

में सहायता मिली है।"[xxi] मथुरा में स्थित महल, मंदिर एवं अन्य ऐतिहासिक इमारतों में उत्तम स्थापत्य, भव्य शैली, आकर्षक मूर्तीकला, आदि इतिहास के स्वर्णयुग का परिचय देते हैं। मथुरा का दिल्ली से आर्थिक और राजनैतिक व्यवहार भी रहा है जिसका प्रभाव ब्रज की मिलिझुली संस्कृति में मुखरित होता है। मथुरा के ऐतिहसिक परिदृश्य में स्थापत्य कला में भव्य इमारतें, मिट्टी के बर्तन, ईंट, मिट्टी की मूर्तियाँ जो मौर्यकालीन हस्तकला का नामचीन उदाहरण हैं, प्राचीन स्थापत्या एवं कला ब्रज के लोककला को लोकजीवन को सूचित करता है। चित्रा शैली में वस्त्र, आभूषण, बाल गोपालदास, रास आदि प्राचीन चित्रों में वर्णित है जिन्हें मथुरा के संग्रहालय में सुरक्षित रुप से रखा गया है। ब्रज भूमि पर विविध शासकों के शासन काल मुद्रा का चलन रहा जिसमें धातु से बने सिक्कों पर ब्रह्मी लिपी प्राप्त हुई, शुंगकलीन सिक्के, कुषाण कलीन सिक्के कनिष्क, वासिष्क या वासुदेव के सिक्के आदि सिक्के विशेष रहे हैं। मथुरा नगरी पर कई बार आक्रमण भी हुए हैं मथुरा या शूरसेन प्रदेश का दिल्ली के पास होना दुर्भाग्य भी था सौभाग्य भी। सर्वप्रथम हूणों ने मथुरा पर आक्रमण किया और उत्कृष्ट स्थापत्य, मूर्तियों से सुशोभित मथुरा की सांस्कृतिक विरासतों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था। मथुरा नगरी में हुए विध्वंस की कथा को कृष्णदत्त वाजपायी ने इस प्रकार वर्णित किया है- "मथुरा नगर उस समय बहुत समृद्ध था और यहाँ अनेक बौद्ध-स्तूपों और संघाराओं के अतिरिक्त विशाल जैन तथा हिन्दू इमारतें विद्यमान थी। हूंणों के द्वारा अधिकांश इमारतें जलाई और नष्ट की गई प्राचीन मूर्तियां तोड़ डाली गई और नगर को बर्बाद किया गया।"[xxii]

12वीं शती के अंत तक दिल्ली के सिंघासन पर मुस्लिम शासकों ने अपना आधिपत्य जमा लिया था। "दिल्ली में गुलामवंश (1206-1290) ई. के बाद खिलजी (1290-1320)ई. तक तुग़लक (1320-1413) ई. सय्यद पर क्रमश: राज्य किया। इन सब वंशों के राज्यकाल में मथुरा प्रदेश दिल्ली की सल्तनत के ही अंतर्गत रहा खिलजी वंश के प्रसिद्ध शासक अलाउद्दीन खिलजी (1296-1316) ई. ने दक्षिण भारत को भी जीतने की चेष्टा।"[xxiii]

मुसलमान शासन हिंदुओं पर काल बनकर आया था इस्लाम का परचम लहराने के उद्देश्य से इन सभी शासकों ने बल एवं विशालकाय फौज से क्रूरता का परिचय दिया जिससे रक्तरंजित भारत भूमि पर विनाशकारी गतिविधियां हुई। मुग़ल शासक जहांगीर के शासनकाल में अब्दुल्ला नामक ज्ञानी इतिहासकार हुए जिन्होंने अपने ग्रंथ 'तारीख-ए-दाऊदी' में सिकंदर लोदी के अत्याचारों का उल्लेख किया था उन्होंने लिखा था कि "सिकंदर का आदेश था कि कोई हिन्दू यमुना स्नान न करें। उसमें नाइयों को हिदायत दी थी कि वे हिंदुओं के सिरों और दाढ़ियों को न मूड़े। उसके कारण हिन्दू अपनी धार्मिक क्रियाएँ नहीं कर सकते थे।"[xxiv] हताश हिंदुओं के पास कोई आस नहीं बची थी कुछ भारतीय कलाविद मृत्यु के भय से नृत्य संगीत का त्याग कर जीवनयापन के लिए पलायन कर गए विध्वंसकारी गतिविधियां बढ़ने लगी मंदिर देवालय नष्ट किए, लुटपाट, पुस्तकों को दहन किया गया। ऐसी विषम परिस्थितियों में त्रासित हिन्दू जनता धर्म की ओर मुड़े और आध्यत्मिक शक्ति से अपने आप को संतावना दी। भक्ति मात्र ऐसा मार्ग हैं जिससे मानव न केवल प्रेरणा अपितु जीवन को सफल बनाने के स्त्रोत प्राप्त करता है।

संस्कृति, समाज, साहित्य, में धर्म का सर्वोच्चय स्थान है। ब्रज के धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिदृश्य से ब्रज के अन्य विरासत का मूल्य ज्ञात किए गए। ब्रज यह भगवान श्री कृष्ण की लीला की भूमि है, यह श्री कृष्ण भगवान की जन्म भूमि नहीं अपितु पावन देवस्थल है जो धार्मिक गतिविधियों के कारण 500 वर्षों से भागवत धर्म का प्रधान केंद्र मानी जाती है। ब्रजभूमि में कृष्ण भक्ति के बीजरोपण का कार्य तेलंग ब्राह्मण आचार्य वल्लभाचार्य ने किया। "श्री वल्लभाचार्य अपनी देशव्यापी यात्रा करते हुए जब सं 1550 के लगभग पहली बार ब्रज में आए थे तब यह पुरातन प्रदेश दिल्ली के सुल्तानों की मज़हबी कट्टरता के उत्पीड़न से त्रस्त था। उन असहिष्णु सुलतानों ने यहाँ पर बने हुए जैन, बौद्ध, वैष्णव, शैव, शक्तिदि धर्म- संप्रदायों के प्राय: सभी मंदिरों-देवालय, नष्ट-भ्रष्ट कर दिए थे। उन्होंने मूर्ति-पूजा करने और नये मंदिर

बनवाने पर कड़ी पाबंदी लगा दी थी इस प्रकार यहाँ धर्म प्राण निवासी अपने उपास्य देव कि सेवा-पूजा करने से वंचित हो जाने के कारण बड़े दु:खी थे । श्री वल्लभाचार्य ने गोवर्धन में श्रीनाथ जी की सेवा प्रचलित कर और उनके मंदिर निर्माण का आयोजन कर अपने अदम्य साहस और अपूर्व आत्मबल का परिचय दिया था।"[xxv] इस समय देश में आम जनता तत्कालीन शासकों के उत्पीड़न से निराश हो गई थी। लगभग 12वीं शताब्दी में 'मध्यदेश' मुग़लों का केंद्र रहा ठीक इसी समय दक्षिण भारत से श्री रामानुजाचार्य ने उत्तर भारत में आगमन किया और वैष्णव संप्रदाय के प्रचार-प्रसार में कोई कसर नहीं छोड़ी । मध्य देश में वैष्णव संप्रदाय को अवधार्य करने का श्रेय रामानंद (15 वीं शताब्दी) और आचार्य वल्लभाचार्य(16 वीं शताब्दी) को जाता है। रामानंद राम भक्तिधारा के अनुयायी बनकर लोकमंगल की भावना से ओत-प्रोत भगवान श्री राम निराश भारतवासियों की धार्मिक सद्भावना को प्रगाढ़ कर जीवन को नई दिशा दी। वल्लभाचार्य ने ब्रजवासियों को भगवान श्री कृष्ण की महिमा से परिचित कराया उन्होंने ई सन् 1565 में अष्टछाप की स्थापना की जिसमें ब्रजवासी कवियों को स्थान दिया। वल्लभाचार्य और उनके पुत्र विट्ठलनाथ ने क्रमश: चार-चार शिष्यों को लेकर आठ मुद्राएं अर्थात् अष्टछाप की स्थापना की। ब्रजवासी कवियों ने कृष्ण भक्ति को नई दिशा दी।

भारतीय भक्ति को दो धाराओं में बांटा गया है, निर्गुण भक्ति काव्यधारा और सगुण भक्ति काव्यधारा। भक्तिकाल (पूर्वमध्यकाल) के अंतर्गत सगुण भक्ति को क्रमश: दो भागों विभाजित किया है 1.कृष्णभक्ति काव्यधारा 2.रामभक्ति काव्यधारा । भारतीय भक्तिकालीन साहित्य में कृष्णभक्ति के लिए सूरदास जी और रामभक्ति के लिए तुलसीदास जी का नाम सर्वोपरि है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इन्हें हिन्दी भक्तिकाव्य नभ के सूर्य एवं चंद्र की संज्ञा से सम्मानित किया है। भारतीय भक्ति आंदोलन का प्रभाव भारतीयों पर हुआ। यह कहना उचित होगा कि दक्षिण भारत से चली भक्ति आंदोलन की चिंगारी समग्र भारत में मशाल बन कर प्रकाश दे रही थी। वैदिक काल से लेकर मध्यकाल के आविर्भाव तक कृष्णमतावलंबियों ने विभिन्न पंथ एवं

संप्रदायों की स्थापना की जिनमें वैष्णव संप्रदाय के आगमन से कृष्णोपासना का विस्तार बढ़ने लगा और मथुरा के ब्रज मण्डल में धार्मिक क्रियाएं सक्रिय हुई स्मरण कराना उचित है कि वल्लभाचार्य (1492 ई.) में ब्रज क्षेत्र में वैष्णव पंथ कि स्थापना के बाद ही कवि एवं लोकगायक कृष्ण के कीर्तन करने लगे। धार्मिक सद्भावनाओं के चलते ब्रज क्षेत्र में निंबार्क संप्रदाय, हितहरिवंश द्वारा राधावल्लभी संप्रदाय लगभग 16वीं शती, और स्वामी हरिदास द्वारा टट्टी संप्रदाय (1560ई.) आदि संप्रदायों के स्थापना के बाद कृष्ण भक्ति का विस्तार हुआ। विभिन्न संप्रदायों के संस्थापकों ने ब्रजभूमि पर लोककल्याणकारी कार्य किये। विषम समय में हिन्दू प्रजा के मनोबल को बढ़ाने का श्रेय इन्हीं महापरूषों को जाता है। इस संदर्भ में कृष्णदत्त वाजपेयी का कथन है- ‘‘मुस्लिम कट्टरता के बावजूद इस काल में हिन्दू समाज ने अपने को जीवित रखा। विवेच्य काल में कुछ ऐसे संत हुए जिन्होंने हिन्दू जाति में नई शक्ति का संचार किया। रामानंद, कबीर, नानक, चैतन्य, मीराबाई, वल्लभाचार्य तथा कितनी ही विभूतियों ने शुद्ध भाव और भक्ति का प्रशस्त मार्ग जनता के सामने रखा वैष्णव धर्म की जो कल्याण धाराएं इन महानुभावों द्वारा प्रवाहित की गई उन्होंने इस देश को सरस भक्ति से आप्लावित कर दिया। इन महात्माओं ने लोकहित के लिए जिस साहित्य की सृष्टि की उसने भारतीय जीवन को व्यापक रूप से प्रभावित किया।’’[xxvi] समान रूप से ब्रजवासियों का भी दृष्टिकोण धार्मिक कार्यों को नए आयाम देने में बदल गया।

ब्रज में कृष्ण भक्तिधारा का प्रवाह और सक्रिय होने लगा राजनैतिक परिस्थितियों के कारण विभिन्न संप्रदायों से प्रभावित होकर ब्रज में धार्मिक तीर्थ स्थलों को पुन: स्थापित किया गया। आम जनमानस ने अपनी श्रद्धा और आराधना से कृष्ण भूमि को विशिष्ट बनाया है। ब्रज भूमि पर बालकृष्ण की नाना प्रकार की क्रीड़ाएं, गोपी रास, मित्रता, प्रेम, आदि भावों का समागम है। जिससे यह समग्र भारत में कृष्ण भक्ति के आकर्षण का केंद्र है। धार्मिक ब्रज में पौराणिक काल से चली आ रही ब्रज की परिक्रमा श्रद्धालु श्रद्धा और आस्था से नग्न पैर से करते हैं। हिन्दू

धर्म में इस परिक्रमा का अधिक महत्त्व है 84 कोस के परिक्रमा ब्रज मण्डल या मथुरा मण्डल के चारों ओर स्थित वनों से अनुरूप की जाती है। ब्रज में 12 वनों के परिमाण प्राप्त होते हैं "पद्मपुराण (११-१७) में ब्रज के १२ बनों के नाम इस प्रकार लिखे गए हैं- १. मधुबन, २.तालबन, ३.कुमुदबन, ४.बहुलाबान, ५.कामबन, ६.खदिरबन, ७.वृंदाबन, ८. भद्रबन, ९.भाडीरबन, १०. बेलबन, ११.लोहबन, और १२. महावन। इनमें से आरंभ ७ यमुना नदी के पश्चिम में और अंत के ५ इसके पूर्व में बतलाए गए हैं।"[xxvii] समस्त भारत से भक्त ब्रज में दर्शन और वनयात्रा के लिए आते हैं।

प्रभुदयाल मित्तल ने अपने ग्रंथ ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास में ब्रज की चौरासी कोस की यात्रा को निम्न मानचित्र द्वारा प्रस्तुत किया-

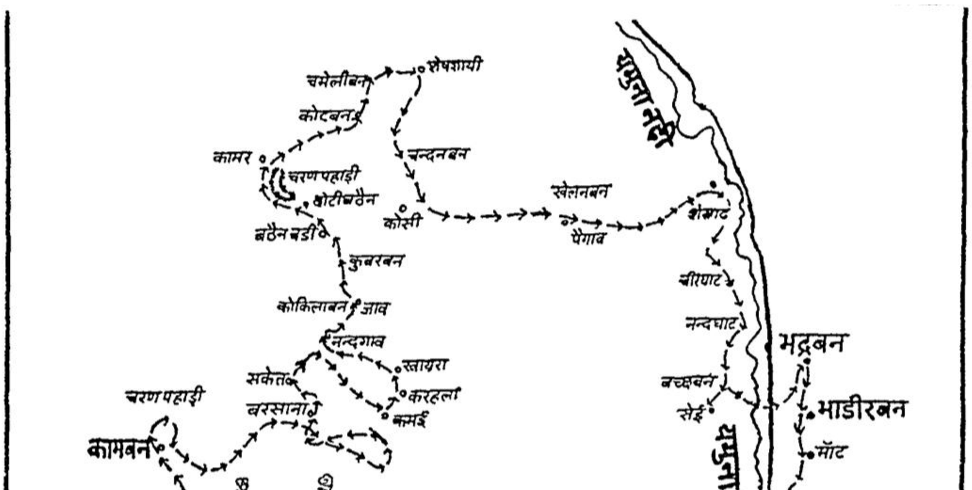

सांप्रदायिक ब्रज (ब्रज चौरासी कोस की यात्रा का क्षेत्र)

ब्रज चौरासी कोस की यात्रा का क्षेत्र ।”[xxviii] ब्रज में अन्य तीर्थस्थलों की समान रूप से पूजा अर्चना की जाती है। ब्रज अपनी धर्मोपासना के लिए विश्व प्रख्यात है यमुना नदी के मैदानी भाग में बसे इस ब्रज मण्डल का प्रभाव प्रबल व निरंतर है।

किसी भी क्षेत्र की सांस्कृतिक विरासत का परिचय वहां के ऐतिहासिक और धार्मिक परिदृश्यों से आँका जाता है। विश्व धरातल पर भारतीय संस्कृति की अलग पहचान है। इस विशाल देश की संस्कृति एवं परंपरा पूर्वजों द्वारा वंशानुगत क्रम में सदियों से चलती आ रही है। विविध राज्यों की मिलि-झुली संस्कृति भारत को विश्व में विशिष्ट बनाती है भारत एक सुंदर बगीचा है और राज्य भांति-भांति के पुष्प जो अपनी उत्कृष्ट संस्कृति से भारतीय सांस्कृति के उपवन को सुंगधित कर रहे हैं। प्रादेशिक संस्कृति एवं परंपरा का प्रवाह लोकसाहित्य की सहायता से सदियों से हस्तांतरित होता चला आया है। संस्कृति का शाब्दिक अर्थ है सम्यक् कृति जिसका संबंध संस्कार से है, “ ‘संस्कृति’ शब्द का उद्गम संस्कार शब्द से हुआ है, जिसका अर्थ कि क्रिया जिसके द्वारा मन को मांजा जाता है, जीवन परिष्कृत किया जाता है, मानवता व निखारा जाता है और विचारों को संस्कारिन किया जाता है, वह संस्कृति है।”[29]

हम जन्म से मृत्यु तक 16 संस्कारों के वृत्त में जीवन व्यतीत करते हैं। मानव जीवन के मूल्य संस्कृति से है प्रभुदयाल मित्तल ने संस्कृति की महत्व को इस प्रकार बताया है कि- “संस्कृति किसी भी जाति या समाज की आत्मा होती है। इसमें उक्त देश, जाति या समाज के चिंतन-मनन, आचार-विचार, रहन-सहन,बोली-भाषा, वेश-भूषा, कला-कौशल आदि सभी बातों का समावेश होता है।”[30]

सांस्कृतिक ब्रज यह समग्र भारतीय संस्कृति के अंतर्गत एक क्षेत्रीय संस्कृति है। ब्रज के ऐतिहासिक एवं धार्मिक परिदृश्यों की चर्चा हम विगत पृष्ठों पर कर आए हैं जिसके अनुरूप ब्रज क्षेत्र के तीज-त्यौहार, शादी-ब्याह, खान-पान, ऋतु-पर्व, वेश-आभूषण, साधन-सामग्री आदि

की विशिष्टता है। सांस्कृतिक ब्रज के निर्माता और प्रस्तोता बाल ग्वाल बंसीधारी किसन है, उन्हीं के आशिर्वाद से ब्रज कि संस्कृति शिष्ट एवं लचीली है। ब्रज की संस्कृति धार्मिक है, सांस्कृतिक विरासत कला और धर्म से विकसित है। ब्रज संस्कृति के समन्वय में समर्पण, स्नेह और सेवा आदि तत्त्व कृष्णोपासना से अंकुरित हुए है। ब्रज की जनता उत्सव प्रिय है जिससे ब्रजवासियों की सांस्कृतिक चेतना अधिक प्रबल है। ब्रज में राजनैतिक गतिविधियों के कारण ब्रज प्रदेश मुग़ल शासको के परिधि में रहा जिससे मुस्लिम संस्कृति का प्रचार-प्रसार हुआ हिंदु-मुस्लिम निर्विरोध सूफी संतों, पीर-औलिया की दरगाह पर प्रार्थना करते हैं। ब्रज में बौद्ध, जैन, हिन्दू, मुसलमान आदि समुदायों के सहयोग से ब्रज संस्कृति धर्मनिरपेक्षवादी है।

ब्रज के व्रत, त्यौहारों, और उत्सवों का अपना विशेष स्थान है। बारहमास के ऋतुचक्र में ब्रजवासी तीज-त्यौहारों को मास शुक्ल पक्ष के अनुकूल मनाते हैं। धार्मिक गतिविधियों के प्रबल होने के कारण यहाँ कृष्णमय वातावरण है। देवी-देवताओं को अधिक महत्त्व दिया जाता है तथा तन्मय होकर भक्ति की जाती है, भक्ति का सर्वोत्कृष्ठ दृश्य चैत्र मास में नवरात्रि में देखने को मिलता है ब्रज में रात भर जागरण होते हैं माता की स्तुति में 'रतजगे' के गीत गाये जाते हैं। घर-घर देवी माँ की पूजा-अर्चना होती है, नौ दिन व्रत रखा जाता है, साथ ही कन्याभोज का आयोजन कर पुण्य कमाया जाता है। समग्र भारत में फाल्गुन मास में होली का त्यौहार धूम-धाम से मनाया जाता है। ब्रज की होली विश्वप्रख्यात है रंगोत्सव को गुलाल और प्रेम स्नेह का प्रतीक माना जाता है ब्रज की लठ्मार होली में स्त्रियां पुरुषों को लठ् से मारती हैं और पुरुष अपना बचाव करते हैं। यहाँ नंदगाँव के कृष्ण और बरसाने की राधा रानी के होली खेलने का उल्लेख अधिकांश लोकगीतों में मिलता है। इन लोकगीतों में ब्रज की युवती नंदगाँव के युवकों द्वारा गालों पर गुलाल मलने पर उन पर प्रथा अनुसार लठ्ठ से प्रहार करती हैं। इस प्रकार के दृश्यों का विवरण लोकगीतों में भरपुर मात्रा में प्राप्त होता है। ब्रज की होली में प्रेम हँसी ठिठोली के सुंदर व्यंग्य राधाकृष्ण के संदर्भ में गाये जाते हैं। ब्रज की लट्ठमार होली, उत्सव-पर्व, ब्रज धाम की

परिक्रमा, स्वादिष्ट पकवान, मिष्ठान विश्वप्रख्यात है । सांस्कृतिक दृष्टि से ब्रज का वातावरण उदार, संपूर्ण और सजीव है। ब्रज में विविध अवसरों के उपलक्ष में अलग-अलग क्षेत्रों में मेलों का आयोजन किया जाता है। इन मेलों में संस्कृति और सभ्यता का समागम होता है। यहाँ स्वादिष्ट पकवान ठेलों पर बिकते है, नट, तमाशा, मदारी बंदर का खेल आदि देखने को मिलते हैं।

ब्रज संस्कृति में धार्मिक परिवेश अधिक सक्रिय है। वनों का उल्लेख किये बिना ब्रज संस्कृति का परिचय अधुरा है। संस्कृत लिखित पुराण, वैदिक युगीन ग्रंथ आदि में श्रीकृष्ण अपनी गायें चराने का उल्लेख मिलता है। जिनमें 12 वन और 24 उपवन का विवरण दिया गया है। ब्रज के 12 वन निम्नालिखित है-

1. मधुवन	7. वृंदावन
2. तालवन	8. भद्रावन
3. कुमुदवन	9. भाण्डरीवन
4. बहुलावन	10. बेलवन
5. कामवन	11. लोहवन
6. खिदिरवन	12. महावन

इनमें से आरम्भ सात वन यमुना नदी के पश्चिम में हैं और अंत के पाँच वन उसके पूर्व में हैं।"[31]

ब्रज के प्रमुख वनों के अतिरिक्त अन्य 24 उपवन हैं

1. अराट (अरिष्ट वन)	13. पारसोली
2. सतोहा (शांतनु कुंड)	14. आन्यौर
3. गोवर्द्धन	15. आदि बदरी
4. बरसाना	16. विलासगढ़
5. परमादरा	17. पिसायौ
6. नंदगाँव	18. अंजनखोर
7. संकेत	19. करहला
8. बेलवन	20. कोकिलावन
9. शेषशायी	21. दधिवन (दहगाँव)
10. मानसरोवर	22. रावल
11. गोकुल	23. बच्छवन
12. गोपालपुर	24. कोरववन।"[32]

इन वनों एवं उपवनों पर पर्यटक एवं दूर दराज से यात्रीगण मुख्यत: पद यात्रा के लिए आते हैं। ब्रज की संस्कृति आस्था और श्रद्धा का केंद्र है। ब्रज का राधा-कृष्णमय वातावरण श्रद्धालुओं को आध्यत्म के सुत्र से बांधे हुए हैं। यहाँ आकर राधे-राधे के जाप में मग्न श्रद्धालू अपने लौकिक सुख की अनुभूति प्राप्त करते हैं।

- **निष्कर्ष :**

'ब्रज' शब्द की व्युत्पत्ति से 'ब्रज' के क्षेत्रवाची होने तक कि यात्रा रोमांच भरी है। भगवान श्रीकृष्ण के रासलीला स्थल के रूप जानी जानेवाली ब्रज भूमि इतिहास की सबसे उत्कृष्ट क्षेत्रों में से एक है। ब्रज में गायों का नित्य चरना और चलना ग्वाल बाल श्रीकृष्ण की लीलाओं का ही प्रभाव है। दिल्ली के निकट यमुना के किनारे बसा चौरासी कोस के ब्रज क्षेत्र को 'ब्रज मण्डल' (मथुरा मण्डल) के नाम से जाना जाता है। आचार्य सत्येन्द्र ने ब्रज प्रदेश को 'मध्यदेश' कहकर पुकारा। ब्रज की कला स्थापत्य, धार्मिक परिवेश, मेले, ब्रज की रासलीला, ब्रज परिक्रमा, आदि को भारतीय संस्कृति में सम्मिलित हुई। ब्रज संस्कृति की महानता कृष्ण से है यह भगवान श्रीकृष्ण की जन्मभूमि भी है और कर्मभूमि भी। ब्रज क्षेत्र से निकालकर ब्रज भाषा का अस्तित्व भारतीय सर्वोत्कृष्ठ भाषा के रूप में रहा। ब्रजभाषा का यथोचित वर्णन हम कर चुके है। ब्रज के धार्मिक परिदृश्य में कृष्णभक्ति केंद्र बिंदु है ब्रज मण्डल की परिक्रमा आज भी भक्तजन अपनी सहूलियत अनुसार करते हैं। पर्यटक वृंदावन, गोकुल, गोवर्धन, नंदगांव, डींग, बरसाना आदि स्थलों पर परिक्रमा के लिए आते हैं। इसके अतिरिक्त ब्रज में 12 बन, लगभग 24 उपवन, एवं 5 पर्वतों का उल्लेख प्राचीन संशोधनों में मिलता है। समय के साथ विकास के पाठ पर ब्रज के बन, उपवन कहने भर के मात्र रह गए है जिसका प्रमुख कारण जनसंख्या वृद्धि है। धार्मिक गतिविधियां ब्रज भूमि में आज भी सक्रिय है तथा ब्रज की संस्कृति प्रशंसा समग्र विश्व में है। पर्यटक ब्रज के खान-पान में मथुरा के पेड़े, पेठा,घेवर,सोनपपड़ी आदि मिष्ठान प्रख्यात है, कचौड़ी, चाट आदि का लुत्फ उठाते हैं। इसके अलावा वेश-भूषा, साधन, बर्तन, आभूषण आदि में दिल्ली के शासनकारियों का प्रभाव दिखता है। व्यापार के उद्देश्य से आवागमन कई वर्षों तक रहा जिसके कारण ब्रज की संस्कृति मिश्रित है। ब्रज भाषा में अन्य भाषाओं के शब्द मिश्रित होते गये और ब्रज बोली में समयानुसार परिवर्तन आये मुग़लों के प्रभाव से उर्दू भाषा का प्रयोग ब्रजवासी भी करते हैं। इतिहास में घटित वीभत्स घटनाओं के

बावजूद ब्रज प्रदेश की गरिमा एवं शौर्यगाथा कण-कण में व्याप्त है। सांस्कृतिक एवं धार्मिक महोत्सव यहां की जनता मिल-झुलकर मनाते है। भगवान श्रीकृष्ण के साथ इस ब्रज भूमि से स्वामी हरिदास, महाकवि सूरदास दयानंद के गुरु विरजानन्द, रसखान आदि का जन्मभूमि है। इन सभी महापुरुषों के जन्म से ब्रज की पवित्र भूमि गौरवान्वित हुई है।

संदर्भ ग्रंथ सूचि

1. डॉ. सत्येंद्र ; ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन ; पृ.44
2. प्रभुदयाल मित्तल; ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास; पृ.2
3. डॉ. सत्येंद्र; ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन; पृ. 44, 45
4. प्रभुदयाल मित्तल; ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास; पृ.2
5. धीरेन्द्र वर्मा; ब्रजभाषा; चौरासी वार्ता प्रसंग 1; पृ.16, 17
6. प्रभुदयाल मित्तल; ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास; पृ.3
7. वही; पृ .3
8. डॉ. सत्येंद्र; ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन; पृ. 45
9. वही; पृ. 46
10. लेखक- सर जॉर्ज ग्रियर्सन अनुवादक: उदयनारायण तिवारी; भारत का भाषा सर्वेक्षण (भाग- 1); पृ. 318
11. धीरेन्द्र वर्मा; ब्रजभाषा; पृ.33
12. सं.भगवान सहाय पचौरी; ब्रज गरिमा; दिसंबर ; अंक 1988; पृ.21
13. प्रभुदयाल मित्तल; ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास; पृ.18
14. सं. राहुल सांकृत्यायन एवं डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ; हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास (भाग 16); डॉ सत्येंद्र; ब्रज लोक साहित्य; पृ.352
15. कृष्णदत्त वाजपेयी; ब्रज का इतिहास; पृ.1
16. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल; हिन्दी साहित्य का इतिहास; पृ.98
17. धीरेन्द्र वर्मा ब्रजभाषा; पृ.17
18. डॉ. नगेंद्र; महाकवि देव और रीतिकाल कि भूमिका; शोध प्रबंध टंकित प्रकरण देव की भाषा; पृ.5

19. सं. वासुदेवशरण अग्रवाल; साहित्य वाचस्पति सेठ कन्हैयालाल पोद्दार अभिनंदन ग्रंथ; शौरसेनी भाषा की प्राचीन परंपरा; श्री सुनीतिकुमार चटर्जी; पृ. 80
20. कृष्णदत्त वाजपेयी; ब्रज का इतिहास; पृ. 9
21. वही; पृ .11
22. वही; पृ .114
23. वही; पृ .137
24. सुनीति आचार्य; ब्रज साहित्य एवं लोकगीत परंपरा; महाभाष्य -5-3-57; पृ.44
25. प्रभुदयाल मित्तल; ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास; पृ.3
26. कृष्णदत्त वाजपेयी; ब्रज का इतिहास; पृ.142
27. प्रभुदयाल मित्तल; ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास; पृ.9
28. वही; पृ.9
29. देवेंद्र मुनि शास्त्री; साहित्य और संस्कृति; भुमिका से।
30. प्रभुदयाल मित्तल; ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास; पृ.83
31. वही; पृ.39
32. वही; पृ. 42

अध्याय-2

2.1 (अ). लोकसाहित्य का परिचय एवं वर्गीकरण

लोकसाहित्य यह ग्रामीण मानव की सहज एवं सरल आत्माभिव्यक्ति है। लोकसाहित्य यह लोक और साहित्य शब्दों के योग से निर्मित है, लोक का शाब्दिक अर्थ है जन, आमजन, जगत आदि। साहित्य अर्थात् सहित होने का भाव, लोक शब्द संस्कृत में दर्शन या देखना के अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है। इसके अतिरिक्त लोक शब्द का उल्लेख वैदिक ग्रंथ ऋग्वेद, महाभारत, भगवद् गीता, रामचरितमानस आदि में मिला है। यहाँ लोक के दो अर्थ मान सकते हैं पहला जगत, समाज और दूसरा आम या सामन्य जनता। लोक का उल्लेख इहलोक और परलोक शब्दों में वैदिक युगीन ग्रन्थों में ज्ञात हुआ है। डॉ.रवीद्र भ्रमर के अनुसार- "साहित्य और संस्कृति के एक विशिष्ट भेद की ओर इंगित करनेवाले एक आधुनिक विशेषण के रूप में इस शब्द का अर्थ ग्राम्य या जनपदीय समझा जाता है किन्तु इस दृष्टि से केवल गाँवों में ही नहीं वरन नगरों, जंगलों, पहाड़ों, और टापुओं में बसा हुआ मानव समाज जो अपने परंपरा प्रथित, रीति-रिवाजों और आदिम विश्वासों के प्रति आस्थाशील होंने के कारण अशिक्षित एवं अल्प सभ्य कहा जाता है; 'लोक' का प्रतिनिधित्व करता है।"[1] "जो लोग संस्कृत या परिष्कृत वर्ग से प्रभावित न होकर अपनी पुरातन स्थिति में रहते हैं वे 'लोक' होते हैं।"[2] लोकसाहित्य यह आमजनता की चित्रवृत्तियों की सहज सरल अनुभूति है। बालकृष्ण भट्ट ने साहित्य को जन समूह के हृदय का विकास कहा है। लोकसाहित्य ग्रामीण जनता का वह साहित्य है जो वटवृक्ष की भांति अपनी विशालकाय भुजाओं को धरती से जोड़े सदियों से अपने अस्तित्व की रक्षा कर रहा है।

लोकसाहित्य को विभिन्न विद्वानों ने परिभाषित किया हैं जिनमें कुछ विद्वानों द्वारा की गई परिभाषाएं निम्नानुसार हैं- डॉ. सत्येंद्र के अनुसार- " लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो अभिजात्य संस्कार शास्त्रीयता और पांडित्य की चेतना अथवा अहंकार से शून्य है और जो एक परंपरा के प्रवाह में जीवित रहता है ऐसे लोक कि अभिव्यक्ति में जो तत्त्व मिलते हैं वे लोक-तत्त्व कहलाते हैं ।"[3] इसी क्रम में डॉ. श्याम परमार द्वारा दी गई परिभाषा है- "हिन्दी का 'लोक' शब्द 'फोक'(folk) का पर्यायवाची है। 'जन' या 'ग्राम' यद्यपि फोक के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं, तथापि अपने सीमित क्षेत्र के कारण उन्हें लोक की व्यापकता के अनुरूप नहीं मानना चाहिए। जन प्राचीन शब्द है। 'संस्कृत' एवं 'पालि' ग्रन्थों में मानव समाज का बोध 'जन' से ही कराया गया है। इस दृष्टि से 'जन' और 'लोक' में पर्याप्त समानता है परंतु प्रयोग और परंपरा के प्रचार में आधुनिक 'फोक' की अनुरूपता के लिए लोक ही अधिक उपयुक्त एवं प्रतिबिम्बात्मक है। न केवल इतना ही, बल्कि पूर्व संस्कारों के कारण वह 'फोक'(Folk) से कहीं अधिक विशाल स्तर को स्पर्श करता है ।"[4] वासुदेवशरण अग्रवाल का कथन है- "लोकहमारे जीवन का महासमुद्र है; उसमें भूत, भविष्य, वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है। लोक राष्ट्र का अमर स्वरूप है लोक कृतस्न ज्ञान और सम्पूर्ण अध्ययन में सब शास्त्रों का पर्यवसान है। अर्वाचीन मानव के लिए लोक सर्वोच्चय प्रजापति है। लोक, लोक की धात्री सर्वभूत माता पृथिवि और लोक का व्यक्त रूप मानव, यही हमारे नए जीवन का अध्यात्म शस्त्र है ।"[5] उपयुक्त मतों के आधार पर हम कह सकते हैं की लोकसाहित्य यह आमजन समुदाय का साहित्य है जो अनपढ़ होते हुए भी अपनी सांस्कृतिक विरासत को आज भी जीवित रखे हुए है। लोकसाहित्य शिष्ट साहित्य से भिन्न है इस साहित्य का कोई लेखक या प्रस्तोता नहीं है यह आम जनसमुदाय के दु:ख-सुख, वियोग-मिलन, हर्ष-विषाद आदि भावनाओं को जिस तरह व्यक्त करता है वही संचित अनुभूति लोकसाहित्य है। पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक परंपरा का अनुसरण करते हुए चला

आ रहा है। लोकसाहित्य ग्रामीण जनता के सहज और सरल भाव की अनुभूति है। "डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने लोकसाहित्य को पाँच भागों में विभाजित किया है,

1. लोककथा
2. लोकगाथा
3. लोकगीत
4. लोकनाट्य
5. प्रकीर्ण साहित्य"[6]

उपर्युक्त विद्वनों द्वारा दी गयी परिभाषाओं एवं वर्गीकरण को आधार मान लोकसाहित्यिक विधाओं का संक्षिप्त परिचय निम्नानुसार है।

▪ लोककथा

अंग्रेजी (Folklore) का हिन्दी पर्याय लोककथा या लोकवार्ता है। पृथ्वी पर मानव जन्म के साथ ही लोककथाओं का प्रसार हुआ होगा। मनुष्य की प्रवृत्ति है निरंतर प्रयोग करना खोज करना। अर्वाचीन मानव संस्कारों से बंधा है और इसी प्रवाह में मानव जन्म के साथ संस्कार के कार्य अनिवार्य हो जाते हैं। सोलह संस्कारों में तीन संस्कार विशेष हैं जो जन्म, मृत्यु और शादी के चक्र में व्याप्त है, इन संस्कारों के अधीन ही लोकमानव की संस्कृति सांस लेती है। डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार- "लोक-कथा विश्व में व्याप्त हैं। इसके अंतर्गत समाज अथवा देश की परम्पराएँ सुरक्षित हैं। वास्तव में लोक-कथाएँ नाना रूपों में लोक-जीवन को आच्छादित किए हुए हैं। आदिकाल से उनका गठबंधन मनुष्य की चेतना से चला आ रहा है। मानव के सुख-दु:ख, प्रीति, श्रृंगार, वीर-भाव और बैर इन सब ने खाद बनकर लोक-कथाओं को पुष्ट किया है। रहन-सहन, रीति-रिवाज, धार्मिक-विश्वास, पूजा, उपासना, इन सबसे कहानी का ठाठ बनता रहा है। कहानी मनुष्य के लिए अपूर्व विश्रांति का साधन है। मन के आयास को हटाने के लिए कहानी मानव-समाज का प्राचीन रसायन है।"[7] लोकवार्ता ही लोककथा है, डॉ. श्याम परमार के अनुसार लोकवार्ता का विभाजन इस प्रकार है-

1. लोकगीत, लोककथायें, कहावतें, पहेलियाँ आदि
2. रीति-रिवाज, त्यौहार, पूजा-अनुष्ठान, व्रत इत्यादि।
3. जादू-टोना, टोंटकें, भूत-प्रेत संबंधी विश्वास
4. लोकनृत्य,लोकनाट्य आंगिक अभिव्यक्ति इत्यादि।
5. बालक-बालिकाओं के विभिन्न खेल, ग्रामीण एवं आदिवासियों के खेल इत्यादि"[8]

डॉ. सत्येन्द्र ने लोककथा या वार्ता के महत्व को स्पष्ट किया है कि - “पिछड़ी जातियों में प्रचलित अथवा अपेक्षाकृत समुन्नत जातियों के असंस्कृत समुदायों में अवशिष्ट, विश्वास, रीति-रिवाज, कहानियाँ गीत तथा कहावतें आती हैं। प्रकृति के चेतन तथा जड़-जगत के संबंध में भूतों-प्रेतों की दुनिया तथा उनके साथ मनुष्यों के सम्बन्धों में विषय में जादू-टोना, वशीकरण, ताबीज, भाग्य शकुन, रोग तथा मृत्यु के संबंध में आदिम तथा असभ्य विश्वास इसके क्षेत्र में आते हैं और भी इसमें विवाह उत्तराधिकार, बालकल्याण, तथा प्रौढ़जीवन के रीति-रिवाज तथा अनुष्ठान और त्यौहार, आखेट, मत्स्य व्यवसाय, पशुपालन आदि ऋषियों के रीति रिवाज और अनुष्ठान इसमें आते हैं तथा धर्म, गाथाएं अवदान (लीजेंड) लोक कहानियाँ साका (बैलाड) गीत, किंबदंतियाँ, पहेलियाँ, लोरियाँ भी उसके विषय हैं।”[9] लोककथा यह अंग्रेजी folklore (फोकलोर) का हिन्दी अनुवाद है। किन्तु विद्वानों ने लोककथा एवं वार्ता को पाश्चत्य के फोकलोर से भिन्न माना है।

लोकमानस ने लोककथा का सृजन जन्म से ही किया है, ऐसा कहा जा सकता है। वैदिक शास्त्रों से युक्त कथाएं लोककहानीकार अपने ज्ञान एवं अनुभव से प्रस्तुत करता है। पुराणों से प्राप्त कथाओं को पौराणिक कथाओं एवं आख्यान की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। पुराणों से उद्धृत होने के कारण भी इन्हें पौराणिक कहा जाता होगा इन कथाओं में सृष्टि के अस्तित्व में आने से लेकर उसके विनाश का उल्लेख मिलता है। जिनमें देवी-देवताओं और प्रकृति के तत्त्व वायु, आकाश, भूमि, वृक्ष आदि का निरूपण किया जाता है। भारतीय संस्कृति में लोककथा का स्थान धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। धार्मिक कथाओं में विविध भगवानों से जुड़ी कथाओं का उल्लेख मिलता है जिनमें सत्यवती कथा, सत्यानारायण कथा, महाभारत, रामायण के विभिन्न घटनाओं की कथा जिनमें हनुमान, लक्ष्मी, दुर्गा, शिव-पार्वती आदि इष्टों से संबंधित कथाएं मिलती हैं। लोककथाओं को विषय एवं विशेषता के अनुरूप विभाजित किया गया है। लोककथा की कलात्मक शैली साहित्यिक कहानियों के कथा से भिन्न होती

है। लोककथाओं के वर्गीकरण विभिन्न विद्वानों ने नवीन अन्वेषण के अनुसार किए हैं जिनमें कृष्णदेव उपाध्याय का वर्गीकरण है -

1. नीतिकथा
2. व्रतकथा
3. प्रेमकथा
4. मनोरंजन कथा
5. दंत कथा
6. पौराणिक कथा"[10]

डॉ. सत्येन्द्र ने स्थूल रूप से लोककथाओं को आठ भागों में विभाजित किया है-

1. गाथाएँ
2. पशु-पक्षी संबंधी अथवा पंचतंत्रीय
3. परी की कहानियाँ
4. विक्रम की कहानियाँ (Adventures)
5. बुझौबल संबंधी
6. निरीक्षण गर्भित कहानियाँ
7. साधु-पीर की कहानियाँ (Hageological)
8. कारण निर्देशक कहानियाँ (Acteological)"[11]

लोककथाओं का रचना संसार बृहद है, उपयुक्त विभाजन के अनुरूप विभिन्न लोककथाओं का वर्णन मिलता है। प्रेम कथाओं के अंतर्गत पारिवारिक संबंधों की कथाएं देखने को मिलती हैं जिनमें पति-पत्नी, दाम्पत्य जीवन कि कामवासना रहित प्रेमकथाएं, माता-पुत्र, भाई-बहन आदि प्रेम की रोचक एवं सुंदर कथाएं मिलती हैं जिन्हें बच्चे बड़े सभी उत्सुकता से सुनते हैं।

सामाजिक कथाओं में बाल-विवाह, बहू-विवाह, न्याय आदि विषयों का उल्लेख समाजसुधारक कथाएं प्राप्त होती हैं। पौराणिक कथाओं में राजा हरिश्चंद्र, नल-दमयंती स्वयंवर, सत्यवती कथा, गोपीचन्द, श्रवणकुमार, भरथरी आदि कथाओं का उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त धार्मिक कथा, वीरकथा, परीकथा, बालकथा आदि कथाओं के माध्यम से लोकमानव को हितोपदेश देने का कार्य लोककथाकार करता रहा है तथा समाज को नीति-पालन एवं आदर्शवादी बनाने का प्रयास करता है।

- **<u>लोकगाथा</u>**

लोकगाथा यह गेयात्मक कथा होती है, लोकगाथा को पाश्चात्य साहित्यकार folk-ballads (फोकबैलेड) या Lyrical Ballad (लिरिकल बैलेड) नामों से अभिहित करते हैं। लोकगीत और लोकगाथाओं दोनों ही गेयात्मक है। लोकगाथा में कथा की प्रधानता होती है। लोकगाथा अन्य लोकसाहित्यिक प्रवृत्तियों विशाल होती है, लोकगाथा में कथावस्तु गेयात्मक है तथा छोटे-छोटे गीतों से मिलकर एक बड़ी कथा निर्मित होती है इस तरह कहा जा सकता है कि लोकगाथा यह महाकाव्य के समान जिस के अंतर्गत गीत, वाद-संवाद का मिश्रण होता है। पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने लोकगीत को हृदय का धन और महाकाव्य को मस्तिष्क का धन स्वीकार किया है। लोकगाथा में ऐतिहासिकता का पुट होता है। जिससे आदिकालीन प्राप्त महाकाव्य कहीं न कहीं लोकगाथात्मक रूप में लोकमानव गाता है। “कजली होली, चैता, सोहर, जँतसार, भजन, और पराती आदि गीति काव्य की कोटि में रखे जा सकते हैं और आल्हा, विजयमल, लोरकी, हीर-रांझा, ढोला-मारू राजा रसालू क गीतों को प्रबंध काव्य कहा जा सकता है।”[12] लोककहानीकारों को गाथा प्रस्तुत करने में विशिष्ट योग्यता हासिल होती है, लोकगाथा यह गेयात्मक गीतिकथा है, प्रस्तोता गीतों के माध्यम से ऐसा रोमांचक वातावरण उत्पन्न करता है कि प्रत्येक श्रोता, दर्शक, उससे बंधे रहते हैं और कथा को उत्कर्ष तक ले जाकर माहौल बनाते हैं जिससे जनता मंत्रमुग्ध हो जाती है।

लोकसाहित्यिक विधा लोकगाथा को विद्वानों ने कुछ इस प्रकार वर्गीकृत किया है। डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने लोकगाथाओं को तीन भागों में बांटा है-

1. प्रेम-कथात्मक गाथा (Love Ballad)

2. वीर-कथात्मक गाथा (Heroic Ballad)

3. रोमांच-कथात्मक गाथा (Uprendural Ballad)”[13]

प्रो. गूमर ने लोकगाथाओं को छ: भागों में विभक्त किया है,-

1. प्राचीनतम गाथाएँ (Oldest Ballad)

2. कौटुंबिक गाथाएँ (Ballads of Kinship)

3. आलौकिक गाथाएँ (Coronach and ballads of Supernatural)

4. पौराणिक गाथाएँ (Legendary Ballads)

5. सीमांत गाथाएँ (Border Ballads)

6. आरण्यक गाथाएँ (Greenwood Ballads)”[14]

“भारतीय लोकगाथाओं में उपदेशात्मक की प्रवृत्ति कहीं-कहीं पाई जाती है यद्यपि गायक और समाज में एक प्रकार की अविच्छित्रता है। प्राय: भारतीय लोकगाथों में शौर्य, प्रेम, देशभक्ति, आज्ञापालन, आदि अनेक प्रसंग पाये जाते हैं। गाथाओं में वर्णित चरित्रों के त्याग, तपस्या, सतीत्व आदि से शिक्षा तो मिलती ही है। इन आदर्श चरित्रों से हृदय आकर्षित व श्रद्धावनत भी होता है।”[15]

भारत में लोकमंगल की भावना से ओत-प्रोत कथाओं का सागर है। प्रेम, वीर, वात्सल्य, रोमांच से संबन्धित गाथाओं का उल्लेख इतिहास में मिलता है। पाश्चात्य में इंग्लैंड रॉबिनहुड की कथा किसको ज्ञात नहीं ठीक इसी तरह भारत में भी कुछ समाजसेवी डाकुओं का उल्लेख मिलता है यह डाकु अमीरों को लूटकर गरीबों की सहायता करते थे। जिसमें पश्चिमी उत्तर-प्रदेश की सुल्ताना डाकू, आगरा-ग्वालियर के डाकू मानसिंह, राजस्थान के जोरावरसिंह आदि के किस्से लोकगाथाओं में प्रचलित है। लोकगाथाओं में राजस्थान की प्रख्यात ढोला मारू रा दूहा, बुंदेलखण्ड की आल्हा-उदल वीर गाथा, मध्यप्रदेश जगदेव की गाथा, पंजाब के राजा रसालू आदि लोकगाथाओं में ऐतिहासिक, धार्मिक एवं सामाजिक स्थिति का परिचय प्राप्त होता है। डॉ. कुंदनलाल उप्रेती ने प्रेमकथात्मक गाथाओं में भारत विविध राज्यों में प्रचलित गाथाओं का विवरण दिया है। भोजपुरी की कुसुमदेवी, भगवती देवी, बिहुला की कथा, भरथरी, राजस्थान के ढोला- मारू, पंजाब के हीर-रांझा आदि की गाथाओं ने लोकमानव को रस मग्न किया है।

▪ लोकगीत

लोकसाहित्यिक विधाओं में लोकगीत सबसे महत्त्वपूर्ण और परिपूर्ण विधा है। मानव जन्म से मृत्यु तक सोलह संस्कारों के वृत्त में जीवनयापन करता है। यही लोकगीत संस्कारों के निर्वहन में अहम भूमिका निभाते आए हैं। लोकसाहित्य में लोकगीत को सर्वसम्मपन विधा माना जाता है। लोकगीतों को विविध विद्वानों ने परिभाषित किया है जिनमें पंडित रामनरेश त्रिपाठी के अनुसार "ग्रामगीत प्रकृति के उदगार है इनमें अलंकार नहीं केवल रस है छन्द नहीं केवल लय है, लालित्य नहीं केवल माधुर्य है!!! ग्रामीण मनुष्य के स्त्री-पुरूष के मध्य में हृदय नामक आसन पर बैठकर प्रकृति गान करती है। प्रकृति के वे ही गीत ग्रामगीत है।"[16] "आदिम मनुष्य हृदय के ज्ञानों का नाम लोकगीत है। मानव-जीवन की उसके उल्लास की उसकी उमंगों की उसकी करुणा की उसके रुदन की उसके समस्त सुख-दु:ख की।"[17] बाबु गुलाबराय ने लोकगीत के साधारणीकरण पर कहा है कि - "लोकगीतों के निर्माता प्राय: अपना नाम अव्यक्त रखते है और कुछ में यह व्यक्त भी रखता है। वे लोकभावना में अपने भाव मिला देता है। लोकगीतों में होता तो निजीपन ही है किन्तु उनमें साधारणीकरण एवं सामान्यता कुछ अधिक रहती है।"[18] "लोकगीत मानवीय कृतित्व की वह सामान्य धरोहर है जो विश्व-मानव की भूमि पर प्राप्त हुई है।"[19] इसी क्रम में डॉ. सदाशिव फडके का कथन है- "शास्त्रीय नियमों की विशेष परवाह न करके सामान्य लोकव्यवहार के उपयोग में लाने के लिए मानव अपने आनंद-तरंग में जो छंदोबध्द वाणी सहज उद्भूत करता है,वह लोकगीत है।"[20] लोकगीतों के अस्तित्व को बनाए रखने से उसकी रसात्मक अनुभूति को जीवित रखने का श्रेय महिलाओं को हैं। स्त्रियाँ लोकगीतों का केंद्र बिन्दु है, जन-जीवन के उतार चढ़ाव को इन लोकगीतों के माध्यम से महिलाएं संवेदना के शब्दों में गूँथ के गाती है और इस तरह प्रतिदिन नये लोकगीतों का उदय होता है। संस्कारों की दृष्टि से लोकगीतों में गर्भाधान, पुंसवन, यज्ञोपवीत, मृत्यु के बाद के गीत आदि हमारे संस्कार में प्रधान है। कृष्णदेव उपाध्याय ने लोकगीतों के वर्गीकरण की विभिन्न पद्धतियों का उल्लेख किया है-

- “गीत विभिन्न उत्सवों तथा ऋतुओं में गाये जाते है
- संस्कारों की दृष्टि से
- रसानुभूति की प्रणाली से
- ऋतुओं और व्रतों के क्रम से
- विभिन्न जातियों के प्रकार से
- क्रिया-गीत की दृष्टि से”[21]

लोकगीत हमारे निजी जनजीवन एवं विकास में अहम भूमिका निभाते हैं। लोकजीवन और संस्कृति एक दूजे से जुड़े हुए है। लोकगीतों के वर्गीकरण के विषय में पंडित रामनरेश त्रिपाठी का विभाजन भी उल्लेखनीय है।

1. संस्कार संबंधी गीत
2. चक्की और चरखे के गीत,

   धर्म गीत त्यौहारों पर गाये जानेवाले गीत भजन आदि
3. ऋतु संबंधी गीत सावन फाल्गुन और चैत्र के गीत
4. खेती के गीत
5. भिखमंगों के गीत

- मेले के गीत
- भिन्न-भिन्न जातियों के गीत, जैसे अहीर, चमार, धोबी, पासी कुम्हार आदि।
- वीरगाथा जैसे आल्हा, लोरिकी, हीर-रांझा ढोला-मारू आदि।

-	गीतकथा, छोटी-छोटी कहानियाँ जो गा-गाकर कही जाती है

-	अनुभव के वचन जिन्हें घाघ, भण्डारी आदि श्रेणियों में विभक्त किया है।"[22]

डॉ. श्याम परमार के अनुसार "लोकगीत निर्वैयक्तिक हैं। उन्हें समूह द्वारा निर्मित माना जाता है, इसलिए व्यक्तित्व का अभाव और समूह अथवा जातीय विशेषताओं के लक्षण उनमें मिलते हैं, संक्षेपत-

1. अकृत्रिमता
2. सामूहिक भाव-भूमि
3. परंपरागत अथवा मौखिक परंपरा के गुण
4. रूढ़ अतिशयोक्ति और
5. संगीतात्मकता आदि गीतों की विशेषताएँ हैं।"[23]

लोकगीतों के माध्यम से लोक मानव अपने उत्थान एवं पतन की कथा कहता है। जीवन के क्षणिक अनुभूतियों का उल्लेख गीतों में मिलता है, लोकगीत चाहे किसी भी भगवान अन्वेषणकर्ताओं के अनुसार इन गीतों में इतिहास का भी दर्शन होता है। लोकगीतों की विशेषताओं का वर्णन डॉ. मोहनलाल बाबुलकर इस प्रकार की है कि-

1. गीत मौखिक परंपरा से संचित विधियाँ हैं।
2. ये आपौरुपेय (वेदों के रूढ़िवादि अर्थ में) हैं।
3. इनमें नाम और यश की लालसा नहीं होती।
4. ये बनते और बिगड़ते रहते हैं।
5. इनका मूल रूप अप्राप्य होता है।

6. गेयता इनका प्रमुख लक्षण है।

7. देशकाल की सीमा का बंधन इनके साथ नहीं होता

8. इनमें जीवन के अभाव व्यक्त होते हैं, अंकित नहीं।

9. इनमें मानवीय संस्कृति का सारल्य और भावों का व्यापक उभार होता है।

10. इनके स्वरूप में देश की प्रकृति और संस्कृति निहित रहती है।

11. कृत्रिमता के अभाव में लोक की ये स्वाभाविक सजावट रहित अभिव्यक्तियाँ हैं।

12. इनकी भाषा लोक की बोली है, छंदोबद्ध काव्य की भाषा नहीं।

13. ये शहरी वातावरण से दूर रहते हैं। इनमें ग्राम्यांचल की प्रकृति, वातावरण, मानव-जीवन, ऋतु आदि का चित्रण होता है।

14. सामान्य भाव-भूमि का अंकन, लोक-कल्याण की दृष्टि, सामूहिक वृत्ति तथा स्वच्छंदता इनका नित्य लक्षण होता है।"[24]

जन-जीवन से जुड़ा ऐसा कोई विषय नहीं है जो लोकगीतों में नहीं आया हो। आमजनता अपने सुख-दु:ख, हर्ष-उल्लास जन्म-मृत्यु जीवन की अन्य अनुभूतियों को स्वरमय कर अपने मन को प्रफुल्लित करता है। ऋतु संबंधी गीतों में सावन, चैत, फागुन, अगहन के गीत गाये जाते हैं, संस्कार गीतों में गर्भावस्था से पुंसवन और यज्ञोपवीत, छोछक आदि गीत मिलते हैं। लोकगीतों को संस्कारों से ऐसा संबंध है जैसे मानव का हृदय से। संस्कारों के बिना हमारा अस्तित्व अधूरा है। हमारी सांस्कृतिक मूल्यों का आधार लोकसाहित्य है।

संस्कार गीत का एक सुंदर उदाहरण-

"रघुनंदन फुले न समाये

लगुन आई हरे-हरे, लगुन आई मेरे अंगना"

सोबर एवं जच्चा गीतों का एक उदाहरण-

लालन कू है जनम दिन अब

खुशियों कौ आया है।

आजकल के बहू के विषय में ब्रज लोकगीत है जिसमें बहू सास से कहती है कि अपने पति से दिनबीती सुनाऊँगी और तुम्हारी शिकायत करुंगी

आने दै मोरे भोले खसम कुं

एक-एक की दोय-दोय लगायाई दूँगी

उपयुक्त अवसरों पे गाये जाने वाले गीतों का सागर है, भारतीय लोकसाहित्य विभिन्न भाषाओं में उपलब्ध है। लोकगीतों में जन्म गीत में सोबर,जच्चा गीत गाये जाते हैं। मुंडन के गीत, विवाह के गीत, लगुन,तिलक के गीत, भात के गीत, हल्दी-महंदी के गीत, कुआँ-पूजने के गीत, बारात गीत, कन्यादान गीत, गारी गीत, विदाई गीत, होली,दिवाली के गीत, देवी-देवताओं के गीत, छठ के गीत, करवाचौथ के गीत, जाति गीत, ऋतु गीत आदि गीतों का समुद्र लोकसाहित्य में प्राप्त होता है।

▪ लोक-नाट्य

लोक-नाट्य यह पाश्चात्य के Folk Drama (फोक ड्रामा) हिन्दी पर्याय है। भारत में नाटक का सर्वप्रथम उल्लेख भरत मुनि ने किया अत: नाट्यशास्त्र से नाटक का सूत्रपात्र हुआ होगा भरत मुनि ने नाटक को पांचवा वेद कहा है। कालीदास के अभिज्ञानशाकुंतलं में 'काव्येषु नाटकं रम्यम्' इस संज्ञा को लोक नाट्य की दृष्टि से परिपूर्ण माना गया है यह अपरिमार्जित अभिनय एवं वाचिक अभिवयक्ति के साथ लोकमानव द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। लोकनाट्य यह बिना किसी रंगमंच के ग्रामीण क्षेत्रों में चौपाल, चबूतरों पर अभिनीत किया जाता है। लोकनाट्य को विविध बुद्धि मनीषियों परिभाषित किया है। डॉ. कुन्दनलाल उप्रेती ने लोकनाट्य के ग्रामीण आवरण का विवरण देते हुए लिखा है कि- "लोक-नाटक शास्त्रीय तंत्र तथा रचना-विधान से इतर लोक-मानस की सहज स्वाभाविक अभिव्यक्ति है, जिसमें लोक-परंपरा तथा चिर विकसित नाट्य-रूढ़ियों का प्रदर्शन लोक-मंच पर होता है, जो व्यावसायार्थ न होकर अखाड़े के रूप में गली-गलियारों में विद्यमान रहता है। सभी लोक-क्षेत्रों के उपादानों से निर्मित नाटकों का रचयिता भी लोक ही होता है।"[25] डॉ. पुरोहित नारायण दास के अनुसार- लोकनाट्यों का उद्भव एवं विकास सहस्त्रों वर्षों की सतत साधना एवं मानवीय सभ्यता तथा संस्कृति के उतरोत्तर उत्कर्ष की कहानी है। लोकनाट्य आदिम काल में विकसित हुआ और कालांतर में इसके स्वरूप में परिवर्तन हुआ। जब इनमें नृत्य की अपेक्षा गेयत्व और नाट्य की प्रधानता हुई। अत: लोकनाट्य के अंतर्गत वे सभी लोक-रंग आते हैं जो प्रधान होते हैं और जिसमें नाटयांश भी विकासावस्था में जोड़ा गया मिलता है।"[26] लोकनाट्य यह मंचीय लोकसाहित्यिक विधा है लोकसाहित्य के पाँच तत्त्वों के विलय कि विधा है जिसमें गीत, संगीत, कथा, नृत्य, अभिनय एवं संवाद का समावेश होता है। यह पाँच तत्त्व एक जगह पर एकत्रित होकर नाट्य की रचना करते है। लोकनाट्य के प्रांगण में स्वांग, नौटंकी, रासलीला, संगीत, नृत्य, गरबा, आदि अपनी आँचलिकता को प्रस्तुत करते हुए सदियों से विद्यमान हैं। डॉ. श्याम परमार के

अनुसार-“ आँचलिकता इनमें सोलह आने भरी हुई है, जो अभिजात संस्कृत प्राकृत नाटकों में और आचार्यों द्वारा परिभाषित विविध रूपकों में बिलकुल नहीं मिलती ।”[27] डॉ. श्याम परमार ने लोक-नाट्य की परिभाषा देते हुए लिखा है- “लोक-नाट्य लोक रंजन का आडंबरी साधन है, जो नागरिकों के मंच से अपेक्षाकृत निम्न स्तर का, पर विशाल जन के हर्षोल्लास से सबंधित है । ग्रामीण जनता में इसकी परंपरा युगों से चली आ रही है । चूंकि ‘लोक’ में ग्रामीण एवं नागरिक जन सम्मिलित हैं। अत: लोक-नाट्य एक मिले-जुले जन-समाज का मंच है । परिष्कृत रुचि के लिए लोक जिन नाटकों का विधान हैं, उसकी आधार-भूमि यही लोक-नाट्य हैं ।”[28] लोक-नाट्य लोकमानव का अनुरंजन का सर्वश्रेष्ठ साधन है। लोक-नाट्य को विद्वानों ने इस प्रकार विभाजित किया है, डॉ सत्येंद्र के अनुसार-

1. नृत्य प्रधान (रास)
2. नाट्य हास्य प्रधान (भाँड)
3. संगीत प्रधान कथाबद्ध नौटंकी, भगत आदि
4. नाट्य वार्ता प्रधान”[29]

डॉ. कुंदनलाल उप्रेती के अनुसंधान के आधार पर लोकनाट्य का विभाजन

1. धार्मिक, ऐतिहासिक तथा किंवदंतियों पर आधारित(रामलीला, हरिश्चंद्र आदि)
2. नृत्य प्रधान (रासलीला आदि)
3. संगीत प्रधान (भगत, माँच, नौटंकी आदि)
4. हास्य प्रधान (भाँड आदि)
5. नाट्य वार्ता प्रधान ।”[30]

समयानुसार परिवर्तन के साथ लोकनाट्य मात्र मनोरंजन या हास्य का साधन नहीं लोकनाट्य के माध्यम समाज को दुषित करती रूढ़ियों और आडंबर पर व्यंग्य कर लोकनाट्य सुधारक मंच के रूप में समाज में कार्यरत है। भारत के प्रसिद्ध लोकनाट्य का उल्लेख डॉ. कुंदनलाल उप्रेती ने अपनी पुस्तक लोकसाहित्य के प्रतिमान में किया है। भारत के विभिन्न प्रदेशों के लोकनाट्य इस प्रकार हैं कि दक्षिण भारत का 'यक्षगान' यह तमिल, तेलगु , कन्नड़ भाषाओं में खेला जाता है। आन्ध्रप्रदेश के तेलंगाना में इसे 'विधि भगवतम्' कहते है। तेलगु का 'वीधि नाटकम्' लोकमंच है इस मंच पर 'कुचिपुडि' कलाकार अपना अभिनय प्रस्तुत करते हैं। 'तोलबोम्मलु' 'कामनकोट्टु' दक्षिण भारत का लोकप्रिय लोकनाट्य है यह पूस माह में 'पोंगल' के अवसर पर खेला जाता है। महाराष्ट्र का प्रसिद्ध लोकनाट्य 'तमाशा' है, इसके अतिरिक्त 'ललित' एवं 'गोंधल' भी खेला जाता है जिसमें जोड़ा होता है जो नकल और स्वांग कर हास्य अभिनय करता है। 'जात्रा' बंगाल, उड़ीसा तथा पूर्वी बिहार में प्रचलित है इसमें पुरूष ही स्त्री बन अभिनय करते हैं क्योंकि स्त्रियों का प्रवेश वर्जित है। बंगाल के 'गम्भीरा' लोकनाट्य में शिव जी की लीलाओं का अभिनय किया जाता है। गुजरात का 'भवाई', और 'गरबा नृत्य' विश्व प्रसिद्ध है इसमें विदूषक को 'रंगलों' कहा जाता है भवाई की सफलता 'रंगलों' पर निर्भर करती है। 'कठपुतली', 'ख्याल', 'माँच', राजस्थान एवं मालवी क्षेत्र का प्रसिद्ध लोकनाट्य हैं। 'नौटंकी', 'स्वांग' एवं 'भगत' उत्तर भारत के प्रचलित लोकनाट्य हैं। ब्रज की रासलीला, रामलीला त्यौहारों के अवसर पर खेली जाती है दशहरे के अवसर पर समग्र भारत में रावण दहन एवं रामलीला के भव्य आयोजन होते हैं। भारत के प्रत्येक प्रांत में विभिन्न प्रकार के लोकनाट्य आज भी खेले जाते हैं।

▪ लोकसुभाषित या प्रकीर्ण साहित्य

लोकसाहित्य विधाओं में लोकोत्तियों को यथोचित स्थान प्राप्त है। ग्रामीण जनता रोज़मर्रा के व्यवहार में बोलचाल में सैकड़ों मुहावरों, कहावतें, गाली का प्रयोग करते हैं यहाँ ग्रामीण मानव अपने भावों को व्यक्त करते समय उत्तेजित हो जाता है और गाली का भी उपयोग करता है गाली झगड़े या लड़ाई के उद्देश्य से नहीं दी जाती अपनी बात को रोचक एवं प्रभावशाली बनाने के लक्ष्य से की जाती है। जिसका अन्य व्यक्ति बुरा भी नहीं मानता देहात में मन बहलाने के लिए खेल-खेल में पहेलियों का प्रयोग करते हैं। बुझौबल बूझो तो जाने बोलकर बच्चे खेलते हैं और बुद्धि की परीक्षा लेते हैं, लोकमानव दैनिक व्यवहार में लोकोत्तियों के प्रयोग से अपने नैतिक विचारों के साथ लौकिक तत्वो के ऐतिहासिकता उदघाटन होता है। लोकोत्तियों साथ अपने गुण-दोष का भी वर्णन करता है। कुछ ग्रामीण लोग अपना एक तकियाकलाम बना कर हर बात में उसी का प्रयोग करते हैं। बाल्यावस्था से वृद्धावस्था तक के जीवन चक्र में मानव लोकोत्तियों, मुहावरों, खेलगीत, पहेलियाँ, सुकत्तियों का प्रयोग करते हैं , यही प्रकीर्ण साहित्य है। लोक सुभाषित या प्रकीर्ण साहित्य को कृष्णदेव उपाध्याय ने पारिभाषित करने का प्रयास किया है- "लोकोत्तियाँ अनुभव सिद्ध ज्ञान निधि हैं। मानव ने युग-युग से जिन तथ्यों का साक्षात्कार किया है उनका प्रकाशन इनके माध्यम से होता है। ये चीर कालीन अनुभूत ज्ञान के सूत्र हैं। समास रूप में चिर संचित अनुभूत ज्ञानराशि का प्रकाशन इनका प्रधान उद्देश्य है। शताब्दियों से किसी जाति की विचारधारा किस ओर प्रवाहित हुई है, यदि इसका दिग्दर्शन करना हो तो उस जाती की लोकोत्तियों का अध्ययन आवश्यक है।"[31] अनुसंधान एवं शोध के आधार पर कहा जा सकता है कि लोकोत्तियों की सत्ता अति प्राचीन है वेदों में भी इनकी उपलब्धता यह सिद्ध करती है। लोकोत्तियाँ सार्वभौमिक है सार्वकालिक है जिनके रचयिता अज्ञात हैं। उदाहरण स्वरूप 'बड़े का कहा और आंवले का खाया पीछे मीठा लगता है', 'धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का', कहावतें दैनिक व्यवहार में उपयोग में ली

जाती हैं। 'राई का पहाड़ बनाना', 'हाथ में दही जमाना', 'हाथा झुलाते आना', आदि मुहावरों का प्रयोग किया जाता है। विभिन्न लोकसाहित्यिक प्रबंधों के आधार पर परिणाम स्वरुप लोकोत्तियों का संग्रह अभी तक इतना नहीं हो सका है जितना होना चाहिए। जन जीवन के सभी अवसरों एवं अनुभव लोकोत्तियों में भी प्राप्त होते हैं।

2.2 (ब.) ब्रज लोकसाहित्य का स्वरूप एवं विकास

लोकसाहित्य यह लोकमानव के मस्तिष्कपटल पर स्वानुभूति की स्याही से लिखा साहित्य है। लोकसाहित्य की परिभाषा एवं वर्गीकरण का प्रयास विविध लोकसाहित्य अध्येताओं ने किया है जिसका उल्लेख हम विगत पृष्ठों पर कर आए हैं। लोकसाहित्य यह एक जनवादी एवं जीवन व्यापी दृष्टि है, लोकसाहित्य यह समूहिक अनुभूति है, साहित्य समाज का दर्पण है तो लोकसाहित्य ग्रामीण जनता के हृदय का। किसी भी देश की संस्कृति की ख्याति उसके लोकआचरण से होती है भारत में विभिन्न क्षेत्रीय भाषाएं एवं बोलीयाँ हैं जिसका अपना अलग-अलग लोकसाहित्य आज भी उपलब्ध है। शिष्ट साहित्य और लोकसाहित्य में कुछ भिन्नता है, शिष्ट साहित्य को दो भागों में बांटा गया है गद्य और पद्य, लोकसाहित्य भी दो भागों में विभाजित है गद्य और पद्य, गद्य के अंतर्गत लोकगाथा एवं लोककथा का समावेश होता है और पद्य में लोकगीत एवं अन्य का समावेश होता है। कृष्णदेव उपाध्याय ने लोकसाहित्य और साहित्य की भिन्नता को दर्शाते हुए लिखा है कि- "चिरकाल से अर्जित ज्ञान राशि का नाम साहित्य है। जो साहित्य साधारण जनता से संबंध रखता है उसे लोकसाहित्य कहते हैं। जिस प्रकार साधारण जनता का जीवन नागरिक जीवन से भिन्न होता है ठीक उसी प्रकार उनका साहित्य भी आदर्श साहित्य से पृथक होता है।"[32] साहित्य देश, समाज सभ्यता का आधार स्तंभ है। लोकसाहित्य लिखित नहीं है यह वाचिक परंपरा के सहारे सदियों से संस्कृति के प्रवाह में प्रवाहित होता चला आया है। भारतीय लोकसाहित्यकारों ने पाश्चात्य से प्रेरित होकर लोकसाहित्य को संजोने का प्रयास किया है, पंडित रामनरेश त्रिपाठी, डॉ. सत्येन्द्र, कृष्णदेव उपाध्याय, प्रभुदयाल मित्तल, श्याम परमार, झवेरचंद मेघाणी एवं अनगिनत शोधप्रेमी आदि लोकसाहित्य अध्येताओं ने विभिन्न भाषाओं के लोकसाहित्य के अप्रकाशित साहित्य संकलन कर उसे हस्तलिखित कर पृष्ठबद्ध किया है।

ब्रज लोकसाहित्य से अभिप्राय है कि ब्रज भाषा एवं ब्रज क्षेत्र के लोकसाहित्य का अध्ययन कर ब्रज के लौकिक सहृदयता को सहज कर प्रस्तुत करना। "आधुनिक साहित्य की नवीन प्रवृतियों में 'लोक' का प्रयोग गीत, वार्ता, कथा, संगीत, साहित्य आदि से युक्त होकर साधारण जन-समाज, जिसमें पूर्व संचित परंपराएं भावनाएं, विश्वास और आदर्श सुरक्षित है तथा जिसमें भाषा और साहित्यगत सामाग्री ही नहीं अपितु अनेक विषयों के अनगढ़ किन्तु ठोस रत्न छिपे हैं।"[33]

यहाँ ब्रज लोकसाहित्य को हम रामनरेश त्रिपाठी के विभाजन अनुसार वर्गीकृत कर सकते हैं,

1. ब्रज लोककथा
2. ब्रज लोकगाथा
3. ब्रज लोकगीत
4. ब्रज लोकनाट्य और
5. ब्रज लोकोत्तियाँ

▪ ब्रज लोककथा एवं लोकगाथा

लोकमनुष्य जो भी अनुभव करता है घटित परिस्थितियों के मोतियों को अनुभूति के साथ कल्पना सूत्र के धागों में पिरोकर कथात्मक रूप से व्यक्त करता है वह लोककथा लोकवार्ता है लोककथा की परिभाषा के विषय में डॉ हरद्वारी लाल शर्मा के कथन हैं- "आज लोककथा को आदिम मानव के अविकसित, अर्द्धविकसित मन से उपजी बेसिर-पैर की गढ़त कहकर चल देना संभाव नहीं रह गया है, क्योंकि इसके स्वरूप (क्या?) यदि स्रोत और रचना विधान (कैसे?) और इसके विवेचन और व्याख्या (क्यों?) से सबद्ध प्रश्नों का उत्तर खोजने में नृविज्ञान, समाज विज्ञान, इतिहास, साहित्य शास्त्र, दर्शन, धर्म, जीव-विज्ञान, और मनोविज्ञान आदि सौ वर्षों से भी अधिक समय से लगे हुए हैं। विचार आगे बढ़ा है, किन्तु गुत्थी अभी सुलझाई नहीं जा सकी है। मानव मन की मामूली सी दिखनेवाली एक झलक खरगोश और कछुवे की कहानी, गरुड़ का स्वर्ग से अमृत-कलश लेकर उड़ना, प्रोमिथियस द्वारा स्वर्ग से अग्नि कि चोरी, वैष्णवी और देवी-देवियों की कथाएँ, कभी समाप्त न होनेवाली लोक चर्चाएं ये सब और साधारण से मिथक और आख्यान-आख्यायिकाएं अपनी पूरी और प्रमाणिक जानकारी के लिए एक नए विज्ञान की अपेक्षा रखते हैं। यही लोक-कथा का विज्ञान है।"[34] लोककथाओं का उद्भव तभी से है जब से पृथ्वी पर मानवजीवन का। मानव की प्रवृत्ति रही है कि वह हर बात कथा में गढ़कर कहता है शायद तभी से लोककथाओं का उद्भव हुआ होगा। पौराणिक ब्रज लोककथाओं में देवी-देवताओं, जादुई-तिलस्मी, प्रेमकथाएं, व्रत कथाएं, आदि कथाओं का अक्षत भंडार है श्रुति परंपरा कहे या वाचिक परंपरा के वहन से आधुनिक युग में ये लोककथाएं आज भी विद्यमान हैं। डॉ सत्येन्द्र के अनुसार – "वेदों की बीज कहानियाँ ही पुराणों की कथाओं में पल्लवित पुष्पित हुई है। इन कथाओं में मूल प्राय: वेदों में देखे जा सकते हैं।"[35] डॉ. कुन्दन लाल उप्रेती ने लोककथा की परिभाषा इस प्रकार की है- "वास्तव में कथा की ऐसी मौखिक परंपरा जिसमें लोकमानस के तत्त्व विशेष रूप से विद्यमान हों और जिनका उद्देश्य जन-मनोरंजन के अतिरिक्त प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से ज्ञानवर्धन भी हो, वही हमारी दृष्टि से लोककथा है।"[36]

डॉ. सत्येन्द्र ने ब्रज लोककथाओं वैदिक कहानियों से लेकर आधुनिक युग की कहानियों के स्त्रोतों का वर्णन किया है, आदिकालीन कथाओं का उल्लेख करते हुए वैदिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत, पालि-प्राकृत अपभ्रंश आदि कथाओं का विवरण दिया है। पंचतंत्र की कथाएं, बौद्ध की जातक कथाएं, नचिकेता, पुरुरवा-उर्वशी की शतपथ ब्राह्मण कथा, जैन कथाएं पउमचरिऊ आदि ख्यातिलब्ध आदिकालीन कथा साहित्य क्षेत्रिय बोली व देशभाषा में प्राप्त हुई। ब्रज लोककथाओं के उत्पत्ति के विषय में डॉ. सत्येन्द्र का कथन है- "ब्रजभूमि ही एक ऐसा क्षेत्र है, जहां से कहानियाँ संपूर्ण भारत में व पाश्चात्य देशों में सर्वत्र व्याप्त हुई हैं। हमारे प्रचलित कहानी ग्रंथ पुराण व धर्मशास्त्र इत्यादि समस्त सामाग्री को दृष्टिगोचर करने से यही विदित होता है कि ब्रजभूमि ही मौलिक कहानियों की उद्भाविका थी।"[37] डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल ने लोककथा के विषय में कहा है कि- "लोककथा विश्व व्याप्त है। इसके अंतर्गत समाज अथवा देश की परम्पराएं सुरक्षित हैं। वास्तव में लोककथाएं नाना रूपों में लोकजीवन को आच्छादित किए हुए हैं। आदिकाल से उनका गठन बंधन मनुष्य की चेतना से चला आ रहा है। मानव के सुख-दु:ख, प्रीति-शृंगार, वीर-भाव और बैर इन सबने खाद बनकर लोककथाओं को पुष्ट किया है। रहन-सहन, रीति-रिवाज, धार्मिक विश्वास पूजा, उपासना इन सबसे कहानी का ठाठ बनता रहा है। कहानी मनुष्य के लिए अपूर्व विश्रोती का साधन है। मन के आयास को हटाने के लिए कहानी मानव समाज का प्राचीन रसायन है।"[38] लोकसाहित्य समझने व सरल बनाने के उद्देश्य से लोकसाहित्यिक विधाओं का वर्गीकरण किया गया।

- **लोककथाओं का वर्गीकरण डॉ सत्येन्द्र ने इस प्रकार किया है-**

  “साधारणत: स्थूल दृष्टि से कहानियाँ आठ बड़े भागों में बांटते हैं-

1. गाथाएँ
2. पशु-पक्षी संबंधी अथवा पंचतंत्रीय
3. परी की कहानियाँ
4. विक्रम की कहानियाँ (Adventures) बुझौबल-संबंधी
5. बुझौबल संबंधी
6. निरीक्षण गर्भित कहानियाँ
7. साधु-पीर की कहानियाँ (Hageological)
8. कारण निर्देशक कहानियाँ (Acteological)”[39]

- **डॉ. हरद्वारीलाल शर्मा ने लोककथाओं का वर्गीकरण वैज्ञानिक एवं क्रमबद्ध तरीके से किया है-**

1. मिथक कथाएं (Myths)
2. संस्कृति के नायकों की कथाएं (Legends and culture heros)
3. पशु कथाएं
4. सीख कथाएं (Fables, Parafables)
5. परी कथाएं (प्रेम कथाएं भी)
6. वीर कथाएं (Saga heroic tales)
7. बाढ़बोल डींग, गप्प
8. दादी-नानी की कहानियाँ
9. लोकोत्तियाँ
10. व्यंग्य, विनोद, परिहास, चोट चुटकला”[40]

ब्रज लोककथाओं का वर्गीकरण निम्न डायग्राम से समझिए”[41]

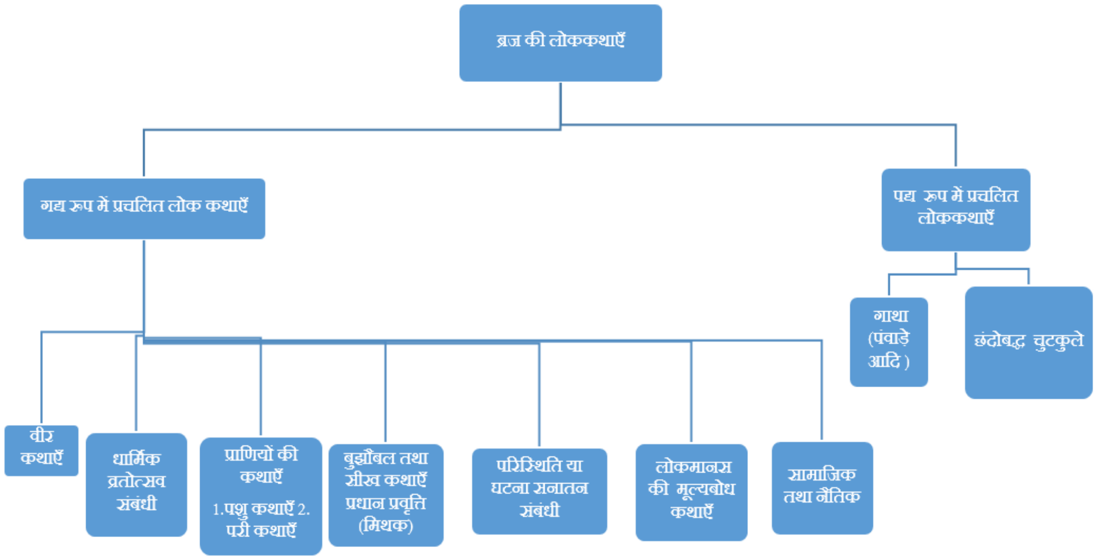

ब्रज लोककथाओं में भगवान श्री कृष्ण के जीवन दर्शन को जन-जन तक प्रेरणा के आधार बनाकर प्रस्तुत किया है, ब्रज लोककथाओं में पद्य एवं गद्य में कथाएं प्राप्त होती है। ये लोककथाएं लोककल्याणकारी उद्देश्य से सुनाई जाती हैं। भारतीय परंपरा में रात्रि के समय कहानी कहने का चलन सदियों पुराना है। घर के बड़े-बुजुर्ग, माता-पिता जब बालक को किस्सागोई के साथ कथा कहता है तब वह लोककथाओं के माध्यम से बालक में संस्कार और दुनियाबी ज्ञान का संचार होता है। ब्रज लोककथाओं में "पशु-पक्षियों की तथा पंचतंत्रीय: ये दो प्रकार की होती है एक सामीग्राय जिनसे कोई न कोई शिक्षा निकलती है; दूसरी वे जिनसे कोई शिक्षा नहीं निकलती। परी की कहानी के कई वर्ग हो सकते है: 1 – वे जो यथार्थ में परियों से, अप्सराओं से, दिव्य कन्याओं से, विद्याधारियों से संबन्धित हैं : जैसे 'वेजान नगर' की कहानी। वेजान नगर की रानी एक अप्सरा थी जिसे तंबोलों के लड़के ने बड़े उद्योग से प्राप्त किया था। दूसरी वे जिनमें दाने (दानव) रहते है। तीसरी वे जिनमें डाहिनें आती हैं। जादू-चमत्कारों की कहानियाँ भी इसी के अंतर्गत होंगी। विक्रम या पराक्रम की कहानी में किसी वीर नायक का चरित्र दिखाया गया है। इसके भी दो प्रकार हो सकते हैं : एक इतिहास-पुरुषाश्रित (अवदान), दूसरा अनैतिहासिक पुरुषाश्रित। ऐतिहासिक पुरुषाश्रित कहानियों में 'वीर-विक्रमजीत' की कहानियाँ प्रधान मानी जाती हैं।"[42]

बुझौबल कहानियाँ मुख्यत: पहेली या शर्त के रूप में होती है। हल खोजने पर परिकल्पित वस्तु प्राप्त हो जाती है । निरीक्षण कहानियाँ मुख्यत: चुटकुलों के रूप में हास्यास्पद कहानी कही जाती है, साधु-पीरों की कहानियों में अंधविश्वास और चमत्कार की कथाएँ देखने को मिलती हैं । ये साधु बाबा पीर-फकीर किस प्रकार संकट निवारण एवं पुत्र प्राप्ती के लिए योग्य रास्ते दिखाते हैं जिसका उल्लेख कथाओं में मिलता है । पारिवारिक संबंधों की लोककथाएँ भी ब्रज में प्रचलित है जिनमें माता-पुत्र, पति-पत्नी, भाई-बहन, सास-बहू आदि कहानियां देखने को मिलती हैं । ब्रज की धार्मिक कथाओं में ऋतु संबंधी, व्रत संबंधी, तीज-त्यौहार संबंधी लोककथाएँ उल्लेखनीय है । ब्रज में नागपंचमी, कृष्ण जन्माष्टमी, रक्षाबंधन, पुत्रदा एकादशी, हरितालिका तीज, गणेश चतुर्थी, आदि ।

ब्रज में प्रचलित नाग पंचमी की कथा इस प्रकार है- “काऊ ब्राह्मण के सात बेटान की सात बहू हीं । छ: बहू तौ अपने भइयान के संग पीहर चली गई पर सातवीं बहू के कोई भैया नाऔ । या कारन बु पीहर नाँय जाय सकी । बा विचारी नै भौत दुखी हैके धरती कुं धारन करिवे बारे शेषनाग कूं भैया के रूप मै याद कियौ ।........... एक दिना अचानक बाके हात ते बु दीयौ घूमते भये नागिन के बच्चान पै गिरि गयौ जाते बिन सबकी पुंछ नेकु-नेकु जर गई ।.......... कै जो कोई बइयर सामन के सुकल पक्ष की पाँचे कुं हमकूं भैया के रूप माँहि पूजेंगी बाकी हम हमेशा रच्छा करते रहिंगों...... ।”[43]

अर्थात् नागपंचमी के उपलक्ष में ब्रज की लोककथाओं में यह कथा प्रचलित है । एक ब्राह्मण के साअत बेटे थे उनमें छ: की पत्नियाँ अपने भाइयों के साथ मायके जाती हैं, सातवीं बहू का कोई भाई नहीं इसलिए वह शेषनाग को भाई की भांति पूजती है, दु:खी महिला को शेषनाग प्रसन्न होकर ब्राह्मण रूप धारण कर उसको साथ ले गए और अपने असली रूप में उसे फन पर बैठकर नागलोक के दर्शन कराए शेषनाग ने एक दीया भेंट के रूप प्रस्तुत किया और

कहा की प्रकाश से दिन की तरहा उजाला होगा। एक दिन वह दीया उसके हाथसे छुट के साँप के बच्चों पर गिर गया और उसकी पूंछ झड़ जाती है, शेषनाग क्रोधित होकर बदला लेने आते हैं किन्तु वह बहू शेषनाग की आकृती की पूजा कर क्षमा याचना करती है यह देख वे प्रसन्न होकर वरदान देते हैं कि कोई भी महिला सावन के शुक्ल पक्ष दिनांक पाँच जो स्त्री भ्राता के रूप में हमारी पूजा करेगी हम सदैव उसकी रक्षा करेंगे।

इसके अलावा ब्रज लोककथाओं में राखी के पावन अवसर की कथा भगवान श्री कृष्ण और द्रौपदी को लेकर कही गई है, एक बेर भगवान श्री कृष्ण के हाथ माँहि चोट लागि गई अरु खून बहवे लागि परौ, बा समै ई देखिकै द्रौपदी नै अपनी धोती कौ छोर फाड़ि के भैया के हाथ माँहि बांध दियौ। याई बंधन कौ ऋषिमुनी कै श्री कृष्ण नै दु:शासन नै जब द्रौपदी की चीर खेंचो तब चीर बढ़ाय के बाकी लज्जा राखी।

इस लोककथा के आधार पर भगवान श्री कृष्ण का हाथा रक्तरंजित होने पर द्रौपदी ने अपनी साड़ी से चीर फाड़ कर भगवान के हाथ में बांधी थी जिससे ऋषिमुनीयों ने द्रौपदी चीरहरण की कथा को रक्षाबंधन के पर्व से जोड़ी है यहाँ द्रौपदी ने कृष्ण को अपनी लाज की रक्षा का दायितत्व दिया दुहशासन के चीर खेंचने पर भगवान श्री कृष्ण ने चीर बढ़ा कर अपनी बहन की लाज बचाई थी। इसके अतिरिक्त ब्रज लोककथाओं का उल्लेख पाश्चात्य लेखक बर्न ने अपनी पुस्तक हैंड बुक ऑफ फोकलोर (Hand Book of Folklore) में दिया है, "उनके इन कथा रूपों का ऐतिहासिक महत्व है। कुछ अंश ब्रज की लोककथाओं में भी प्राप्त हुए हैं- सर्प-पुत्र (ज्यों की त्यों ब्रज में प्रचलित है जिसमें माँ पशु रूप में प्राप्त पुत्र की छाल जला देती है), स्वर्ण पुत्र (जाहरपीर या गुरगुग्गा में लीली बछेड़ी) जुड़वा भाई"[44] डॉ. सत्येन्द्र ने अपनी पुस्तक 'ब्रज की लोककहानियाँ' में नारद और भगवान कौ खेल, कर्म लच्छिमी कौ बाद, धर्म की कथा, नारद कौ घमंड दूरि करयौ, करमु और लच्छिमी राजा विक्रमाजीत आदि का उल्लेख किया है।

ब्रज मण्डल में प्रचलित परम्पराओं, सांस्कृतिक एवं सामाजिक कार्यक्रम के माध्यम से ही मानव मूल्यों, नीति-विचार का विकास हुआ ऐसा कहा जा सकता है। पौराणिक युगीन परम्पराओं का लोकगाथाओं में उल्लेख मिलता है, लोकगाथा की कथा गेयात्मक शैली में होती है, इतिहास में घटित घटनाओं को गा-गाकर कहा जाता है। जिसे लंबे समय तक गाना पड़ता है, लोकगाथाओं में मुख्यत: शौर्य गाथाएँ, प्रेम गाथाएँ अधिक मिलती हैं। "लोकगाथा आख्यानात्मक लोकगीत अथवा पद्यबद्ध लोककथा होती है।"[45] डॉ. सत्येन्द्र ने लोकगाथाओं का विभाजन विषयपरक दृष्टि से किया है- "लोकगाथाएँ चार प्रकार की हो सकती है। १.) विश्व-निर्माण की व्याख्या करनेवाली २.) प्रकृति के इतिहास की विशेषताओं की व्याख्या करनेवाली, ३.) मानवी सभ्यता के मूल की व्याख्या करनेवाली, ४.) समाज तथा धर्म-प्रथाओं के मूल अथवा पूजा के इष्ट के स्वभाव तथा इतिहास की व्याख्या करनेवाली।"[46] ब्रज लोकगाथाओं में ढोला मारू, आल्हा-ऊदल, हीर राँझा, नरसी का भात, बारहमासी मल्हार आदि प्रबंध काव्य प्राप्त हुए हैं। डॉ. सत्येन्द्र ने लोकगाथाओं की संकल्पना कराते हुए लिखा है कि- "ऐसी समस्त गाथाएँ जो यथार्थ ऐतिहासिक बिन्दु पर खड़ी हो गयी हों, अथवा जिनकों किसी समय में ऐतिहासिक प्रतिष्ठा मिल गई हो, उन पर बनी हों, वे लोकगाथाएँ (अवदान) कही जाएंगी। यह अक्षरश: सत्य है कि निम्न तथा अपेक्षाकृत अज्ञान में डूबी जातियों में आज भी दृष्ट प्रकृति मनुष्य का प्रेत, उसकी मृत्यु के उपरांत पूजा जाता है। इसके विषय में बड़ी विलक्षण चमत्कार कथाएँ चल पड़ती हैं। जो मनुष्य अपने शौर्य अथवा किसी मानसिक या शारीरिक शक्ति से अपने समय के लोगों पर अपनी गहरी छाप लगा देता है, वही निरक्षकजनों में अवदान का विषय बन जाता है।"[47]

लोकगाथाओं को प्रम गाथा, गीत गाथा के नाम से भी जाना जाता है, ब्रज में 'पंवाड़ा' 'साकौ' 'साखौ' आदि नामों से लोकगाथा प्रसिद्ध है। लोकगाथाएँ मुख्यत: आख्यान के रूप में प्राप्त होती है, कथावस्तु और कल्पना तत्त्व के साथ ये ऐतिहासिकता का भी उदघाटन होता

है। ‘‘डॉ नरेश चंद्र बंसल ने ‘ब्रज की लोकगाथाएँ’ ग्राठा में ब्रज की लोकगाथाओं का वर्गीकरण इस प्रकार प्रस्तुत किया है- मंगल गाथाएँ (महादेव कौ ब्याह, सीता को मंगल, रुक्मिणी मंगल), देवी गाथाएँ (अचल कुमरि और पांडव), करुण गाथाएँ (सीता बनवास), पशु गाथाएँ (सुरही), भक्त गाथाएँ (पूरनमल, धांनू भगत, राजा-केवल रानी –मोहनदे, राजा महिपाल, बाबू लीला), धर्म गाथाएँ (सरमन, गोपीचंद, जाहरवीर, सुआ-सेवरों), प्रेम गाथाएँ (दमयंती स्वयंवर, हीर-राँझा, जल्ला पठान, राजा- बारबादल, भूला कौ साखौ, गांगदे पारी चंदना मीरा आदि), वीर गाथाएँ (सत्यावादी हरिश्चन्द्र, सागर की लड़ाई, भीम और सोख्ता कौ ब्याह, कीचक बध, सीड़ा की धन्नई, दुर्योधन बध, थुंदाई कौ साकौ, पौपिया बेटी कौ गौनों, हरदौल, हीरामन की गोठ, चन्द्रावली, अमरसिंह कौ पमरौ, वीर कलैया कौ साकौ आदि।)’’[48] लोकगाथाओं की कथा में ऐतिहासिकता के साथ विश्वबंधुत्व की भावना भी है।

▪ **ब्रज लोकनाट्य एवं लोकसुभाषित**

लोक-नाट्य लोकमानव का अनुरंजन का सर्वश्रेष्ठ साधन है। लोक-नाट्य से अभिप्राय है कि बिना रंगमच एवं बिना किसी पूर्व तैयारी के रमनेवाली भावभियक्ति। लोक-नाट्य यह लोकमानस की प्रेरणाओं तथा कामनाओं की कलात्मक अभिव्यक्ति हैं। डॉ. श्याम परमार ने लोक-नाट्य की परिभाषा के विषय में कहा है- "लोक-नाट्य की विशेषता उसके लोकधर्मी स्वरूप में निहित है, लोकजीवन से उसका अंग-अंगी का नाता है। बह्याडंबरों और नागरिक सुसंस्कृत चेष्टाओं के बिना लोक के मनोंभावों और प्रतिक्रियाओं का स्वतंत्र विकास केवल लोकधर्मी नाट्य शैली में ही संभव है। लोकवार्ता का एक स्वतंत्र अंग होने के कारण लोक जीवन में इन नाटकों का अपना अनोखा आकर्षण है।"[49] लोकनाट्यों के उद्भव एवं विकास की चर्चा हम पहले भी कर चुके हैं। मानव जन्म के साथ ही कथा गढ़ने का सूत्रपात हुआ है लोक मानव जिस प्रकार हँसता-रोता है, उत्सव प्रिय ग्रामीण मानव जैसे नाचता झूमता है इसी अनुकरण से अभिनय का कार्य शुरू हुआ होगा संस्कारों के विकास के साथ लोकनाट्यों का भी विकास हुआ। "लोकनाटकों का मंच जन-जीवन के बीच खुला क्षेत्र है। गली-गलियारे, नदी-नाले, वन-पर्वत, खेत-खलिहान, द्वार-उपवन, कहीं भी यह स्वत: रच उठता है। इस मंच के लिए कोई साज-सज्जा नहीं करनी पड़ती। किसी प्रकार के प्रसाधनों को जुटाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। चारों ओर की जन-परिधि ही अपने सहज स्वाभाविक रूप में इसका रंगमंच है। ऐसे स्थान पर ही इसका मंच अपने आप उभर उठता है।"[50] लोकनाट्य और लोक रंगमंच के तीन तत्त्व मुख्य है; नृत्य, संगीत और अभिनय। लोकनाट्य यह मंच के लिए बाधित नहीं हैं खुले मैदान, गाँव की चौपाल, मंदिर का चबूतरा आदि स्थलों रचा जा सकता है। लोकनाट्यों में संगीत और गायन के महत्व के विषय में डॉ. सत्येन्द्र का कथन है- "लोकरंगमंच का नाट्य संगीतात्मक होता है गेयता की इसमें प्रधानता रहती है। इस गेयता का रूप शास्त्रीय नहीं होता। यह सहज लोकसंगीत के तत्त्वों से युक्त होते हैं।"[51] लोकनाट्य को विविध विद्वानों ने विभाजित किया है डॉ. श्याम परमार ने स्थूल दो भागों में विभक्त किया है। 1. सामयिक लघु प्रहसन 2. मध्यरात्रि में आरंभ होकर प्रात: काल तक अभिनेय गीति-नाट्य।"[52]

डॉ. सत्येन्द्र के लोकनाट्य को चार प्रमुख प्रकार माने हैं-

1. **नृत्य प्रधान**

‘आईने अकबरी’ के जिन कीर्तनियों का उल्लेख हुआ है वे आज कल ‘रास’ के रूप में मिलते है। रास में रासानाट्य की प्रधानता है, पात्र या अभिनेता गाते नहीं, गाने का कार्य प्राय: साथ ही संयोजक मंडली करती है।

2. **नाट्य-हास्य प्रधान**

भांड व्युत्पन्नमती वाले पेशेवर नाट्य- कर्ताओं का वंशगत व्यवसाय है। इनमें हास्य-व्यंग्य की मुख्यता होती है।

3. **संगीत प्रधान कथाबद्ध**

इन नाटकों में संगीत संवादों की प्रधानता होती है तथा कथाबद्ध होते है, नौटंकी, माँच, भगत इसी के प्रकार हैं।

4. **नाट्य-वार्ता प्रधान**

नाटक के साथ वाद-संवाद के साथ बातचीत रहती है, संगीत का उपयोग यदाकदा होता है।”[53]

डॉ. कुंदनलाल उप्रेती के अनुसंधान के आधार पर लोकनाट्य का विभाजन

धार्मिक, ऐतिहासिक तथा किंवदंतियों पर आधारित (रामलीला, हरिश्चंद्र आदि), नृत्य प्रधान (रासलीला आदि), संगीत प्रधान (भगत, माँच, नौटंकी आदि), हास्य प्रधान (भाँड आदि), नाट्य वार्ता प्रधान।”[54]

ब्रज में मुख्यत: रास लीला, राम लीला, स्वांग, नकल, भगत या नौटंकी, संगीत,स्वांग, खोरीया और कायिक आदि लोकनाट्य प्राप्त होते है। रास लोकनाट्य का उल्लेख डॉ. कुंदनलाल उप्रेती इस प्रकार किया है -“ब्रज की जनता सरल, आडम्बरहीन रंगमंच रास है।

नृत्य, गीत, वाद्यसंगीत का अपूर्व समावेश इसमें होता है। ब्रज के विविध लोकजीवन की सुंदर अभिव्यक्ति रास में होती है। भगवान कृष्ण गोपियों के साथ एक मण्डल में नृत्य करना रास का प्रधान अभिगम है। अनेक नर्तकियों युक्त नृत्य को ही रास कहा जाता है। इसमें कृष्ण की विविध लीलाओं के साथ-साथ संवाद भी चलते हैं जो गद्य-पद्यमय होते हैं। सूर, नंददास, ललित किशोरी के पद इसमें विशेष रूप से गाए जाते हैं। कवित्त एवं सवैया का भी उपयोग बीच-बीच में किया जाता है।"[55]

भारत की जो लोकनाट्य परंपरा अति प्राचीनकाल से जन-जीवन में प्रवाहमान रहीं है। धार्मिकोत्सव में लोकनाट्य का महत्व देखने को मिलता है। दशहरे के मौके पर समग्र भारत में जगह-जगह रामलीला का आयोजन किया जाता है। ब्रज की नौटंकी विश्वप्रख्यात है भले ही नौटंकी का उद्भव पंजाब में हुआ किन्तु उसका विकास उत्तरप्रदेश में हुआ है । ब्रज में कुछ समय तक नौटंकी भी छिन्न-भिन्न चलती रही लेकिन लालाराम बाबूलाल ने ब्रजकला केंद्र के माध्यम से इसका पुन: गठित किया था । आज जो भी मंडली चल रही है वे ब्रज कला केंद्र की देन है। जिसमें गोपीचंद जी (मुरसान), रामसिंह, नैमसिंह (अकबरपुर), कृष्णाकुमारी, ताराचंद (शिकोहाबाद), अमरनाथ (मथुरा) आदि की मंडलियों को जीवित रखे हुए हैं। आधुनिक युग में नौटंकी का प्रभाव फींका पड़ता जा रहा है। लोकनाट्य परंपरा में कुछ ऐसे तत्त्व हैं जो इन सभी लोकमंचीय परंपरा में एकता की ज्योत जलाएँ हैं। लोकनाट्य के माध्यम से लोकजीवन के रीति-रिवाज उत्सव का उल्लेख अतिआवश्यक है जिससे आधुनिक युग में वह लुप्त न हो।

- **ब्रज लोकसुभाषित**

लोकक्तियाँ साधारण लोक के अनुभूत ज्ञान का सागर है जो जनजीवन के लिए अखंड संपत्ति है। ब्रज लोकोक्तियों में कहावत, पहेलियाँ, बुझौबल, मुहावरों का अक्षत भंडार है, लोक जनता दैनिक जीवन के व्यवहार में बोलचाल में सैकड़ों मुहावरों, कहावतों का प्रयोग करते हैं।

ब्रज लोकोक्ति के कुछ सुंदर उदाहरण-

- इत्ती गंगा नाय कट गयी है कै सिरकटे फ्लांग जै
- लूली मठा फिरावै, नौ जनी करिहाऔं साधौ
- दुई टकै का भात लायीं, भूड़ पै से गाती आयीं
- जाकी कबऊ न फटी बिभाई बु क्या जा नै पीड़ परायी
- ऐसी बलम नै भैंस लयी, बाजी दौनी खटकी रई मांग खाती बाउ से गई
- अट्ठे पौए लड़ाना

ब्रज में पहेलियों को बुझौबल भी कहा जाता है, समूह बनाकर वृत में लोग बैठकर यह खेल-खेलते हैं जिससे बुद्धि का व्यायाम होता है। ब्रज की पहेलियाँ निम्नलिखित हैं-

1. बोलै से बोलै तो नाय मारे से डकराए ; देखौ लोगों जे तमाशा मुर्दा आंटा खाय - **ढ़ोल**

2. सूखे झाँकर अंडे दै - **चरखा**

3. एक पेड़ सल्लौआ, बा पै चील न बैठे कौआ –**धुआँ**

4. सब गाँव सोवै, चंदानियाँ मट्टी ढ़ोवै – **रेलगाड़ी**

5. नौ धरी का पत्ता, चार अंगुल की पीड़,

   फल आवै अलग-अलग, पकै संग – **कुम्हार का चाक**

6. लाल-लाल गुटकूँ ; मै हाथ लगाऊँ तुझकूँ

तु काट खाये मुझकूँ- **बेर**

7. हरी साँठ मुर-मुरा सेंटा,

नाव नै बतावै बाका बाप कानैटा- **गन्ना**

8. खरया भत्ता जै, मेंड़ बनती जै – **सुई धागा**

9. इधर से आई जाटनी उधर से आया जाट

दोऊ मिलागै ऐसे चक्की कैसे पाट - **दरवाजा**

10. कटोरे पै कटोरा, बेटा बाप सेऊ गोरा – **नारियल का गोला**

ब्रज में शिशुगीत या बालगीत भी खेल-खेल में बच्चे गाते हैं, मनोरंजन के साथ गया वर्धक बाते भी करते हैं, माता अपने शिशु को निद्रा देवी की गोद में देने हेतु बालक को लोरियाँ सुनाती है, बड़े होते-होते बालक विभिन्न गीत खेलते-खेलते सिख जाते हैं । लोकक्तियाँ, बुझौबल, पहेलियाँ, सूक्तियाँ, मुहावरे, कहावत, पालने के गीत, लोरियाँ, खेल गीत, आदि को प्रकीर्ण लोकसाहित्य के अंतर्गत रखा जाता है।

* **ब्रज के कुछ बाल गीत एवं लोरी इस प्रकार है-**

एक वृत बनाकर सब मूठी बनाकर आगे हाथ रख देते हैं। एक बच्चा लकड़ी हाथ मे लेकर उस मूठी मे लकड़ी डाल कर कहता है,,…

“चूँन मूंदरियाँ चूँन ही साय

जो पावै लै-लै भज जाये”…

जाये जिस भी बच्चे के हाथ में आकर लकड़ी रुकती है उसे देकर भगा देता है। फिर निष्काषित बालक को थोड़े दूर से कंधों पे बैठकर आना होता है, कुछ बच्चे नाम लेकर भी यह खेल खेलते हैं। ब्रज का एक और बालगीत बच्चों में से एक बच्चा वृद्ध की नकल कर कमर पर एक हाथ रखकर दूसरे हाथ में लकड़ी से ज़मीन में कुछ ढूँढता है, तब बालक प्रश्नोत्तर करते हैं।

"डुकरिया- डुकरिया का ढूंढति है ?

"सुई"!!

सुई कौ का करेगी ?

थैला सिऊंगी!!

थैले कौ का करेगी?

रुपया धरूँगी!

रुपयो कौ का करेगी?

भैंस लाऊँगी !

भैंसिया कौ का करेगी?

दूध्धू पियूँगी!

दूध के नाव सै मूत पी लै......

गीत खत्म होते ही बच्चे भागते हैं और बुढ़िया बना बच्चा अन्य बच्चों को पकड़ता है।

ब्रज में युक्त लोकोक्तियों को देहाती भाषा में सटे भी कहते हैं। इन सटों के नियोजन से गीतों का निर्माण होता है।

बालगीत में बच्चे अक्सर युगल भी बनते हैं और ऐसे गीत गाते है।

"घनर-घनर घंटारियाँ बजाइयौ

दोय नगरी दूय गांवों बसैयौ!

बस गए चौरा बस गयै मोरा

मोरा कै भां खेती भई!

हाय!! तमंचा मोटी भई!

मोठ-मोठ के चने भुंजाएँ

वे पहुंचाए दिल्ली

दिल्ली मेरा काला कोट

आय पारी चूल्हे की ओट

चूल्हा मांगे सौ-सौ लोट

एक लोट खोंटा

धेय सारी में सोंटा

सोंटा गया टूट डूकरट्टों गई रूंठ

दही दूध बहुतैरा

खाने का मोह टेढ़ा

हलक में डारि लठिया

नाव धरा सिरकटिया!!

ब्रज बालगीत का कासगंज क्षेत्र का प्रसिद्ध गीत :

चक्की तलै जीरा बोया

हाँ सहेली जीरा बोया!

जीरा मै दोय कल्ला फूटा

हाँ सहेली कल्ला फूटा।

कल्ला मैंने गय्यै चराया

गैय्या नै मौय दुद्धू दीना।

हाँ सहेली.....

दुद्धु की मैंने खीर पकाई

खीर मैंने भैये चटाई

हाँ सहेली......

भैया नै मोय रुप्या दीना

रुप्या की मैने ओढ़निया लई

हाँ सहेली.......

ओढ़निया ओढ़ मै बाग मे गई।

भारतीय प्राचीन परंपरा के अनुसार अक्सर माताएं रात्रि समय लोरियाँ गातीं हैं। जिसमें लल्ला-लल्ला लोरी ; दूध की कटोरी ; दूध में बताशा; लल्ला कारै तमाशा और चन्दा मामा दूर कै ; पुए पकाएँ बूर कै ; आप थाली में मुन्ने को दै प्याली में आदि सुनते चलें आएं हैं।

ब्रज की एक लोरी का सुंदर उदाहरण प्रस्तुत है ;

लल्ला-लल्ला लाड़ का!!

परिया पहने पाड़ का

बाजू-बंद रेती कै

काका-नाना बरेली कै...!

आदि रोचक बालगीत सुनने को मिलते हैं।

▪ ब्रज लोकगीत एवं वर्गीकरण

लोकसाहित्य लोकधर्मी परंपरा के वहन में लोक मानव की साधारण अबोध अभिव्यक्ति है। जन साधारण को अपने लोकनुरंजन की प्रेरणा संभवत: संस्कृति से प्राप्त है। यह लोकमनुष्य की प्रवृत्तियों का कोश लोक साहित्य है, इस विषय लोकसाहित्य के उपासक डॉ. सत्येन्द्र का कथन है- “लोकसाहित्य का मूल्य केवल साहित्य की दृष्टि से उतना नहीं होता जितना उन परम्पराओं की दृष्टि से होता हैं जो न विज्ञान के किसी पहलू पर प्रकाश डालती हैं। इस साहित्य को आदि मानव की आदिम प्रवृत्तियों का कोष कह सकते हैं।”[56] कृष्णानंद गुप्त के अनुसार “ग्रामगीत छोटे होते हैं और रचनाकाल की दृष्टि से आधुनिक भी हो सकते हैं।”[57] लोकगीतों को परिभाषित करने का कार्य विभिन्न विद्वतजनों ने किया है। श्याम परमार के अनुसार- “लोकगीत लोकसाहित्य का ही गीत-प्रधान अंग है जिसका उद्भव नगर और ग्राम के संयुक्त साधारण के मध्य होता है। वही वर्ग ‘लोक’ है। किन्हीं अंशों में लोकोन्मुखी प्रवृत्ति का संस्कृतजन भी इस ‘लोक’ का अंश बन जाता है। अत: ग्रामगीत इस दृष्टि से लोकगीत के पूरक ही है।”[58] लोकगीत साधारण जन के मुख से अनायास ही निकल जाते हैं जब भी लोक मानव दु:ख-सुख, तीज-त्यौहार पर स्वानुभूति से निकले संगीतमय स्वर ही लोकगीत है। “वास्तव में गीत खुले आकाश के नीचे, खुली धरती के एक छोर से दूसरे छोर तक अंकुरित हुए और पले हैं और यही धरती इनकी सर्जक माँ है, जिसके वक्षस्थल का दुध पीकर ये पुष्ट हुए हैं। ये किसी से उधार नहीं लिए गए , कहीं से हवा में बहकर नहीं आए, किससी व्यक्ति विशेष ने इमारत की तरह इन्हें गढ़ा नहीं है। सभी ने सुना, सभी ने गाया और अपनी आनेवाली संतति को इन्हें सौंप दिया ! लोकगीत हृदय के खेत में उगते हैं। सुख के गीत उमंग के ज़ोर से जन्म लेते हैं और दु:ख के गीत तो खौलते लहू से पनपते हैं और आंसुओं के स्वामी बन जाते हैं।”[59] “ब्रज के लोकगीतों को हम उनके उद्देश्यों के आधार पर दो भागों में बाँट सकते हैं एक अनुष्ठान आचार संबंधी, दूसरे

मनोरंजन संबंधी ।"[60] यहाँ आचार्य सत्येंद्र ने लोकगीतों को दो भागों में विभाजित किया है, लोकसाहित्यकार कृष्णदेव उपाध्याय ने लोकगीतों का वर्गीकरण इस तरह किया है-

- संस्कारों की दृष्टि से
- रसानुभूति की प्रणाली से
- ऋतुओं और व्रतों के क्रम से
- विभिन्न जातियों के प्रकार से
- क्रिया-गीत की दृष्टि से"[61]

इसके अलावा राजस्थानी लोकसाहित्य के अध्येता पंडित सूर्यकरण पारीक ने अपने ग्रंथ राजस्थानी लोकगीतों में विषयवस्तु की तथ्यपरकता के अनुरूप लोकगीतों को उन्तीस भागों में विभक्त किया है।

1. देवी- देवताओं और पितरों के गीत,
2. ऋतुओं के गीत,
3. तीर्थों के गीत
4. व्रत-उपवास और त्यौहारों के गीत,
5. संस्कारों के गीत,
6. विवाह के गीत,
7. भाई-बहन के प्रेम के गीत,
8. साली-सालेल्यां (सरहज) के गीत,
9. पति-पत्नी के प्रेम के गीत,
10. पनिहारियों के गीत,
11. प्रेम के गीत,

12. चक्की पीसते समय के गीत,
13. बालिकाओं के गीत,
14. चरखे के गीत,
15. प्रभाती गीत,
16. हरजस-राधाकृष्ण के प्रेम के गीत,
17. धमालें-होली के अवसर पर पुरूषों द्वारा गेय गीत,
18. देश-प्रेम के गीत,
19. राजकीय गीत
20. राज दरबार, मजलिस, शिकार, दारू के गीत,
21. जम्में के गीत – वीरों, सिद्ध पुरुषों, महात्माओं की स्मृति में रखे गए जागरण को 'जम्मा' कहते हैं।
22. सिद्ध पुरुषों के गीत,
23. क - वीरों के गीत, ख - ऐतिहासिक गीत,
24. क - गवालों के गीत, ख - हास्यरस गीत,
25. पशु-पक्षी संबंधी गीत,
26. शांत रस गीत,
27. गांवों के गीत (ग्रामगीत)
28. नाट्यगीत
29. विविध"[62]

लोकसाहित्यकारों के लोकगीत विभाजन को आधार मानकर ब्रज लोकगीतों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है।

- संस्कार संबंधी गीत
- श्रम संबंधी गीत (चक्की और चरखे के गीत, कृषि के गीत)
- धार्मिकोत्सव के गीत
- ऋतु संबंधी गीत
- खेती एवं मेले के गीत
- जाति विशेषक गीत
- व्रत एवं देवी-देवताओं के गीत
- बालगीत, लोरियाँ
- विविध

ब्रज लोकगीतों में उपयुक्त सभी प्रकारों के गीतों का भंडार है। ब्रज लोकगीतों की विविधता और बहुलता का प्रमाण बहुत अधिक है। ब्रज लोकगीतों में धार्मिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक गीतों का सागर है, जिनके अंतर्गत प्रकृति पूजा के गीत, कृषि संबंधित गीत,आदि लोकगीतों में व्यापकता है।

▪ संस्कार संबंधी ब्रज लोकगीत

ब्रज लोकगीतों में संस्कार संबंधी गीतों में जन्म के गीत होते हैं जिसमें गर्भसंस्कार से लेकर प्रसव तक के समयान्तराल के गीत हैं। पुंसवन, छठी के गीत,मुंडन के गीत, यज्ञोपवीत गीत, आदि गीत गाए जाते हैं । गर्भाधान से प्रसव तक की यात्रा को महिंलाएँ सोहर या जच्चागीत, जचकीरी भी कहा जाता है। भारतीय संस्कृति में गर्भाधान के प्रथम मास से संस्कार शुरू हो जाते हैं, मुख्यत: सातवें मास में गोदभराई की रस्म की जाती है। शिशु के जन्म के साथ ही महिलाएं गीत गाने के अवसर ढूंढती रहती है। पति-पत्नी को चौक पर बिठाया जाता है और गीत गाये जाते हैं। बालक के अंश आने के बाद नौ मास की यात्रा का वर्णन प्रस्तुत गीत में किया है -

"पहिलौ महिना जब लागिए,

बाकौ फूलु गह्यौ फलु लागिए'

ए बाई दूजौ महिना जब लागिए,

राजे तीजो महिना जब लागिए,

बाकौ खीर खांड मन आइए

******

ए बाइ पंचयौ महिना जब लागिए,

ए बाकू कोल के आम मंगाइए"[63]

प्रसव के बाद संस्कारों का कार्यक्रम शुरू हो जाता है, जिसमें नेग प्रसंग भी होते है पुत्र प्राप्ति पर नन्द को नेग दिया जाता है, छठी के अवसर पर जच्चा-बच्चा को स्नान कराया जाता है और छठी की पूजा होती है इस अवसर पर बुआ (नंद) बच्चे के काजल लगाकर नामकरण करती है। इस अवसर पर गाये जाने वाले कुछ गीत इस प्रकार हैं-

छठी पूजन गीत में प्राय:रिश्तेदारों की गिनती सी लगती है छठी के गीत में एक-एक पंक्ति में नाना-नानी,मौसी, ताई, चाची, माई, बुआ, फूफा आदि आते है पालना झूलते हैं और झुनझुना देते हैं।

छठी पूजन्तर बहू आई सीता,

छठी पूजन्तर बहू आई उर्मिला,

छठी पूजन्तर कहा फल मांगे,

अनु मांगे धनु मांगे, अपने पुरखन कौ राज मांगे।

बारौ झड़ूला गोद मांगै।"[64]

यज्ञोपवीत एवं मुंडन पुत्र जन्म पश्चात सबसे महत्वपूर्ण संस्कार हैं, जिसके तहत ग्रामीण समग्र समुदाय का भोजन समारोह का आयोजन करते हैं। इस आयोजन में बाजे गाजे वालों को नेग देते हैं , भांड़, किन्नर आदि को नेग दिया जाता है। इसके अतिरिक्त छोछक, पालना के गीत भी प्राप्त हैं-

चंदा कहाँ से लाऊं मेरा सामलियाँ।

क्या लल्ला खेलै दादा की गोदी।

क्या लल्ला खेलै दादी की गोदी,

क्या दादा कै पास मेरा सामलियाँ।

ख़िलत-खिलत लल्ला दूर मति जाइयौ,

सर कै झडुलै बाल मेरा सामलिया।

भाभी-नन्द का नेग की सौगात पर एक गीत यहाँ प्रस्तुत है-

मांगे मांगे ननद रानी कंगना लाला के जनै,

हाथी पै बैठे ससुर समझावै,

दैदो दैदो बहुरानी कंगना लाला के जनै,

घोड़े पै बैठे जैठ समझावै,

दैदो दैदो छोटी बहू कंगना लाला के जनै,

चौके में बैठे देवर समझावै,

दैदो दैदो भऊजी कंगना लाला के जनै,

सेज पै लेटे साजन समझावै,

दैदो दैदो (बालक नाम) की अम्मी कंगना लाला के जनै,

तब ननंद प्रसन्न होकर आशीर्वचन देकर कहती है-

भैया मेरौ जीवै, भतीजा मेरौ जीवै

जुग-जुग जीवै तेरौ ललना,

भाभी बार-बार आऊँ तोहरे अंगना लाला के भए,

कंगना उतार हाथ भरलीना ।

लाला के भए।

लोकगायक – (जफर)

जच्चा गीतों में पारिवारिक संबंधों का उल्लेख मिलता है, या यूं कहे के रिश्तों और रिश्तेदारों के नाम ले लेकर गीत की योजना बनाई गयी है ।

रेशमी सलवार कुर्ता का जाली का,

अरे रे रूप सहा न जाए जच्चा प्यारी का,

अरे रे जब जब सासुल आवै मेरे दिल में उठे रे फुलझरियाँ,

अरे रे जब जब नंदूल आवै मेरे दिल में उठे रे फुलझरियाँ,

अरे रे जब जब जिठानी आवै मेरे दिल में उठे रे फुलझरियाँ...।

लोकगायक- (मेहरुन्निसा और जैतुन अब्बासी)

ब्रज में संस्कार गीतों में प्रत्येक संस्कार संबंधी सुंदर गीत मिलते हैं, ब्रज के लोकोत्सव की विहंगम झांकी लोकगीतों में निहित है। मानव जीवन मुख्य तीन संस्कारों के वृत्त में जीवन व्यतीत करता है। जन्म, विवाह, मृत्यु। संस्कार का महत्व लोकमानव को जन्म से पहले ही गर्भ में सिखाया जाता है यह कहन अनुचित न होगा। जनम से पहले और मृत्यु के बाद भी मानव संस्कृति के लोकधर्मी चक्र में वास करता है।

▪ विवाह संबंधी ब्रज लोकगीत

लोक मानव उत्सव प्रिय होता है, जन्म के संस्कारों के बाद विवाह जीवन का अहम संस्कार माना जात है। विवाह के अंतर्गत धार्मिक अनुष्ठान के अनुरूप कार्यक्रम सम्पन्न किए जाते हैं। "विवाह संस्कार में कुछ आचार वैदिक अथवा शास्त्रोंक्त प्रणाली से पुरोहित और पंडित द्वारा कराये जाते हैं और लौकिक आचारों की संख्या वैदिक आचारों से कहीं अधिक होती है। वैदिक आचार को धुरी माना जा सकता है, उस धुरी के चारों ओर लोकाचारों का घना ताना-बाना पूरा हुआ है। लोकाचारों में ही लोकवार्ता और लोकगीत के दर्शन होते हैं।"[65] ब्रज के विवाह संस्कारों में बीजरोपन 'पक्की' से होता है, पश्चात सगाई की रस्म होती है। 'पक्की' में वर पक्ष कन्या के हाथ में शगुन रखकर बात पक्की करते हैं। जिसके बाद कन्यापक्ष वरपक्ष के सभी नाते-रिश्तेदारों को भेंट देता है जिसे 'मिलनी' भी कहते हैं। भोजन के साथ आदर सत्कार करते हैं। विवाह के संस्कारों में तेल चढ़ाई, हल्दी-महंदी, भात, मांडवा, निकरैसी, फेरे(भामर), निकाह, विदाई आदि संस्कार होते हैं जिनमें आमजन समुदाय गीत गाते हैं और इस क्षण को स्मरणीय बनाते हैं। कन्या पक्ष से 'पीली चिट्ठी' आती है जिसके बाद मण्डल कार्यों का आरंभ होता है। विवाह संस्कारों में विविध तैयारियों का वर्णन मिलता है। यह वैवाहिक कार्यक्रम में प्रथम कड़ी लगुन या लग्न पत्रिका है।

जोई सगुन दादी भुआ कूं भए,

सोई लड़िलड़ी हूँ होइ।"[66]

लड़के के विवाह पर नाई न्यौता के साथ चावल ले जाता है, और लड़की के विवाह में सुपारी इस तरहा ब्रज में आमंत्रण दिया जाता है। ब्रज में विवाह के संस्कार को हर्षौल्लास से किया जाता है, ब्रज में भात न्यौतने जाते हैं। विवाह पर मामा 'भात' लाते हैं इस भात में समग्र

परिवार हेतु आभूषण, वस्त्र, भेंट आदि दिया जाता है। सभी परिवार जन की महिलाओं को एकत्रित कर भात गीत गाती है। भात गीत के सुंदर उदाहरण इस प्रकार है,

मेरे लछिमन वीर भात घनेरा लाइयौ,

मेरे माथे को टीका लाइयौ, नाक को बेसर लाइयौ!

वा पै रतन जड़इयौ मैया जाये,

मेरे लछिमन वीर भात घनेरा लाइयौ!

मेरे भईयौ गले कौ लाइयौ जंजीर,

मेरे गले को हरवा लाइयौ, चुकी रत्न जड़इयौ!

मेरे भईयौ गले कौ लाइयौ जंजीर,

मेरे लछिमन वीर भात घनेरा लाइयौ!

(फिरदौस साबिर खान)

भातगीतों में बहनें अपने मायके की लाज और ससुराल में अपने सम्मान के लिए चिंतित दिखी हैं, स्त्रियाँ आभूषण प्रिय होती हैं यही आभुषण प्रेम गीतों में स्पष्ट रूप से दिखता है। वैवाहिक कार्यक्रम परिवार जन एवं स्नेही व्यक्तियों के सहयोग भी देखने को मिलते हैं। सभी विवाह की तैयारियों में हाथ बटातें हैं। ब्रज में विवाह महोत्सव की भांति मनाते हैं। विवाह से कुछ दिन पहले दुल्हा-दुल्हन की रंगत निखरने हेतु हल्दी उबटन लगाते हैं यह रस्म समग्र भारत में समान रूप से मनाई जाती है।

इस अवसर पर हल्दी गीत –

"बरना पै हरदी चढ़ाऔ री, सब आओ परोसिनी ।

हरदी-केसर रोरी मंगाओ,

थारी में धरि कै लाओ री,सब आओ......।"[67]

ब्रज के महंदी गीत का उदाहरण –

बन्ने तू लगायलै, नौ से तू लगायलै,

मंहदी ऊ आयौ, उबटन ऊ आयौ,

नाई को बुलायलै, मामा को बुलायलै,

महंदी आई ।

बन्ने तू लगायलै, नौ से तू लगायलै,

महंदी ऊ आई, कंगना ऊ आया,

भाभी कौ बुलायलै, बहिन कौ बुलायलै,

(फिरदौस साबिर खान)

बन्ने-बन्नी के गीत शादी विवाह के अवसर पर हर रस्म के अंतर्गत गाये जाते हैं। सेहरा बंदी, और बारात निकरैसी के गीत का भण्डार है ।

फुला बिनन जैयौ मेरे लाल बन्ने

बन्ने अच्छै-अच्छै फूलवा बीन के

कपड़े रंग लैइयौ मेरे लाल बन्ने...

अच्छै- अच्छै कपड़े पहिर कै ससुराल कौ जैयौ मेरे लाल बन्ने...

सासुल पूंछै जो बातियाँ शरमाएँ बतलैयौ मेरे लाल बन्ने...

फुला बिनन जैयौ मेरे लाल बन्ने

बन्ने अच्छै-अच्छै फूलवा बीन के

कपड़े रंग लैइयौ मेरे लाल बन्ने...

अच्छै- अच्छै कपड़े पहिर कै ससुराल कौ जैयौ मेरे लाल बन्ने...

साली-सरैज पूंछै जो बातियाँ हँस-हँस बतलैयौ मेरे लाल बन्ने...

फुला बिनन जैयौ मेरे लाल बन्ने

नौसे अच्छै-अच्छै फूलवा बीन के

कपड़े रंग लैइयौ मेरे लाल बन्ने...

अच्छै- अच्छै कपड़े पहिर कै ससुराल कौ जैयौ मेरे लाल बन्ने...

साली जौ पूंछै जो बातियाँ लैके भज अइयौ मेरे लाल बन्ने...

फुला बिनन जैयौ मेरे लाल बन्ने....।

(फिरदौस साबिर खान)

ब्रज क्षेत्र में 'निकरैसी' अर्थात् बारात के निकालने का अवसर इस मौके पर वर पक्ष की महिलाएं गीत गाती हैं। दुल्हे के घोड़ी चढ़ने पर माँ का हृदय भर आता है अपनी आँखों से अपने बेटे को संजता देख वह भावविभोर हो जाती है।

ठाड़ौ रह दूल्हा, तेरी मईल बोलै,

खोलौ खाई देऊ बधाई

दूल्हा ऐ देखन आई लुगाई।

धनियाँ उम्हायौ दूल्हा बागान मोरे,

हासुली मेरी चाल सुहाई,

लोग कहै दुल्ह कारौई कारौ

माइ कहै मेरी जगत उजारौ।"[68]

कुआँ-पूजने के गीत, भाँमार के गीत, कन्यादान के गीत,गारी गीत आदि वैवाहिक संस्कारों के साथ साथ गाये जाते हैं, कन्या पक्ष बारात का स्वागत धूमधाम से करता है, और जलपान आदि की सर्वश्रेष्ठ व्यवस्था करने का प्रयास करता है।

बारात के भोजन ग्रहण करते समय ब्रज में औरतें गारी गीत गाती है,

"दारी समधिन न्हाइवे कूं चाली,

संग लिये गिरधारी.... रंग बरसैगौ

हाँ हाँ राम रंग बरसैगौ...... ।

आप हँसौगै सब ग्वाल हंसिंगे अरु हसेंगी ब्रजनारी

रंग बरसैगौ, हाँ हाँ राम रंग बरसैगौ।"[69]

विवाह के संस्कार में विदाई का वक़्त शोक का होता है, माँ-बाप, भाई-बहन परिवार के सदस्य और स्नेही जन विदाई के रुदन को प्रकट करते हैं, विदाई गीत मर्मस्पर्शी करूण रस प्रधान गीत होते हैं जिन्हें सुनकर ऐसा कोई नहीं जिसके आँखों में नमी न आए। विदाई गीत का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत गीत में हुआ है-

काहे कूं ब्याही विदेस रे सुन बाबुल मोरे

हमतौ बाबुल तेरे अंगना की चिड़िया।

चुग्गा चुगत उड़ जाये रे सुन बाबुल मोर,

हम तौ बाबुल तेरे अंगना की गैया बछिया

जितै हाँको हाँक जाय रे सुन बाबुल मोर....।

(फिरदौस साबिर खान)

ब्रज में विदाई गीतों का एक उदाहरण

“औ रे कौ रे गुड़िया ओ छोड़ी।

रोमन छोड़ी सहेलीरी।।

अपने बबुल को देस छोड़यौ।

अपने ससुर के साथ चली ॥

लेउ बाबुल घर आपनो ।

छोटे बिरन मेरे रथ कौऊ डंडा ॥”[70]

ब्रज में खोरीया नृत्य बारात जाने के बाद वरपक्ष की महिलाएं खेलती हैं, लांगुरिया गीत यह हास्य-व्यंग्य गीत होते हैं।

तसला पीतल का गढ़वाय दै,

टना-टन बोले लांगुरिया।

झां धरा मैंरौ पीसना

भैंयै ससुर की खाट।

निबटत आवै मेरा पीसना।

सिरकत आवै खाट।

तसला पीतल का गढ़वाय दै.... लांगुरिया

झां धरा मैंरौ पीसना।

भैंयै जेठ न की खाट।

निबटत आवै मैंरौ पीसना।

सिरकत आवै खाट।

तसला पीतल का गढ़वाय दै....

टना-टन बोले लांगुरिया।

(फिरदौस साबिर खान)

लांगुरिया के गीत मुख्यत: नृत्य गीत होते हैं, खोरीया नृत्य में महिलाएं पुरुष बनकर हास्य- व्यंग्य करती हैं और नाचती हैं।

- ## मृत्यु गीत

मानव का अंतिम संस्कार मृत्यु है, इस अवसर पर परिवार में शोक और विषाद का वातवरण होता है। मृत्यु के बाद के संस्कार समाज में अनिवार्य रूप से किए जाते हैं ऐसे दु:खद समय में प्राय: गीत नहीं गाये जाते हैं, कहीं कहीं गीत गाये जाते हैं। "ब्रज में ही चतुर्वेदियों में मृत्यु के अवसर पर जो स्त्रियों का रुदन होता है, वह संगीत के साथ होता है, वह संगीत-गति के साथ होता है, संगीत-गति का अभिप्राय किसी वाद्य-यंत्र के साथ होने का नहीं है। इस रुदन में भी एक लय मिलती है, और आभिप्राय: भी होता है। इसमें प्राय : मृत्त पुरुष के विविध प्रिय पदार्थों का नाम ले लेकर शोक प्रकट किया जाता है।"[71]

"काए के कारन जौ वए, और काहे के हरे हरे बाँस,

हरि रे किसन कैसे तिरयऔ,

लाला धरम के कारन जौ वए, मरण के काजे हरे हरे बाँस,

हरि रे किसन कैसे तिरयऔ,

बेटीन व्याही आपनी, मढ़हे न लीयौ कन्यादान,

हरि रे किसन कैसे तिरयऔ,"[72]

ब्रज के लोकोत्सव की धूम समग्र भारत में प्रख्यात है ऋतुओं के अनुसाए ब्रज में उत्सव मनाए जाते हैं वर्षा ऋतु में झुलोत्सव, हरियाली तीज, नाग पंचमी,रक्षाबंधन, गणेश चौठ, जन्माआंठे, आदि प्रमुख रूप से मनाए जाते हैं। ग्रीष्म ऋतु में अक्षय तृतीय, वैशाख, जलविहार, गंगा दशहरा, वटपूजन, भडरिया वौमी, व्यास पूजा, देवसायनी ग्यारस आदि। त्यौहार मनाये जाते हैं, वसंत ऋतु में नवरात्र, दशहरा, रामलीला, वसंतोत्सव, होली आदि। लोकोत्सव पर ब्रज में भिन्न-भिन्न प्रकार के गीत गाये जाते हैं। ऋतु संबंधी, जाति, श्रम गीत एवं विशिष्ट त्यौहारों पर गाये जाने वाले ब्रज गीत के उदाहरण निम्नानुसार हैं।

सावन के माह में रिमझिम फुहार के उत्साह में झूला-झूलती ब्रजनारी गाती है –

"अरी भैंना, घटा तौ उठी है घनघोर, सामन में चमकै बीजुरी जी ।

कारे कजरारे री बदरा झुकि रहे, अरी भैंना उमड़ि-धूमड़ि बहु,

झूला-झूलती री भैंना उर लगै अरी भैंना पिया गए परदेस"[73]

फागुन में विविध धार्मिकोत्सव होते हैं । ब्रज में होली का पर्व विशेष रूप से मानया जाता है, होली का पखवाड़ा मौज-मस्ती होती है ब्रज का होली गीत-

"आज विरज में होरी रे रसिया, होरी रे रसिया वर जोरी रे

कौन के हाथ कनक पिचकारी

कौन के हाथ कमौरी रे रसिया

आज विरज में...

कृष्ण के हाथ कनक पिचकारी।

राधा के हाथ कमोरी रे रसिया ।

उड़त गुलाल लाल भये बादर,

केसर रंग में बोरी रे रसिया ।

बाजत ताल मृदंग झांझढप और मंजीरन जोरी रे रसिया।"[74]

ब्रज लोकगीतों में विभिन्न विषय पर गीतों का सागर है, ब्रज की जनता अपने सुख-दु:ख, हास-परिहास, पर्व, पारिवारिक संबंधों का महत्त्व आदि स्वानुभूति के साथ गा उठे तो लोकगीत बन जाता है, कथा गढ़ने पर आ जाये तो लोक कथा का रूप धारण कर लिया । लोकसाहित्य युगों-युगों से आमजन के कंठ में विद्यमान है ।

▪ निष्कर्ष

लोकमानव का अलिखित साहित्य ग्राम साहित्य ही लोकसाहित्य है। मानव को वाणी के वरदान के साथ ही इश्वर ने ज्ञान के भंडार से मनुष्य को आप्लावित किया, यही ज्ञान की संचित राशि है और ग्रामीण मानव के जीवन का रत्न लोकसाहित्य ही है। लोकमानव अपने दैनिक क्रिया में घटित सुख-दु:ख की अनुभूतियों को जिसप्रकार प्रकट करता है वही लोकसाहित्य है। मुख्यत: लोकगीतों मानवीय संवेदनाओं का पुट होता है। "लोकगीतों में जनजीवन मुखरित है। प्रात: होते ही चक्की तथा बुहारी के साथ जीवन का जागरण होता है और नारीकंठ से गीत निसृत होने लगते हैं। लोकगीतों एवं जनजीवन का इतना निकट का संबंध है कि लोकगीतों में जनजीवन का प्रतिबिंब उभर आता है। क्या लघु स्फुट-गीत, क्या दीर्घ प्रबंध-गीत जीवन के व्यावहारिक पक्ष का उदघाटन सर्वत्र हुआ है। इस व्यावहारिक पक्ष की पृष्ठभूमि में जो मनोवैज्ञानिकता है उसने जनजीवन को सत्य रूप में निरूपित किया है। जीवन का कोई भी पक्ष क्यों न हो लोकगीत वहाँ उपस्थित है।"[75]

बच्चे खेलते-खेलते अनेक गीतों का निर्माण कर लेते हैं, महिलाएं घर गथ्थु काम करती हैं चक्की पिसती हैं, ओखली चलाती है, तब अनायास ही गीत गाने लगती हैं। इन गीतों के माध्यम से वे अपनी पीड़ा, वेदना को प्रकट करती हैं , पारिवारिक समस्याओं के दुख से कुछ क्षण के लिए आंतर मन को आनंदित कर अपने जी को हल्का कर लेती हैं। "लोक साहित्य में यथार्थवाद तथा आदर्शवाद का बड़ा ही सुंदर सामंजस्य उपलब्ध होता है। लोकगीतों में जहां भाई-बहन, माता-पुत्री और पति-पत्नी के आदर्श चरित्र का चित्रण किया गया है वहाँ लोक-कवि यथार्थवाद के वर्णन की ओर भी जागरूक दिखाई पड़ता है। ननद-भावज, सास-बहू और पत्नियों के शाश्वतिक विरोध के सम्यक विवेचन करने में उसने कुछ उठा नहीं रखा है। लोकगीतों में सुखी समाज के धन, धान्य, ऐश्वर्य और विभूति के वर्णन के साथ ही साथ कठिन गरीबी,

अकाल तथा घोर दरिद्रता का दृश्य भी दिखाई पड़ता है। जो काव्य मानव जीवन के केवल एक पहलू का वर्णन उपस्थित करता है वह सच्चा काव्य नहीं कहा जा सकता। जिस काव्य में जन-जीवन की आशा-निराशा, सुख-दु:ख, हर्ष-विषाद आदि सभी भावनाओं का सजीव चित्रण हो वही सच्चा, अमर और लोक-प्रतिनिधित्व काव्य है। इस दृष्टि से लोकसाहित्य को अमर साहित्य कि कोटि में रखा जा सकता है।"[76] लोकसाहित्य की समूची सत्ता एक पुराना वटवृक्ष है, जो सदियों से अपनी शाखाओं की से नित ज्ञान का प्रसार करता रहता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ. रवीद्र भ्रमर; हिन्दी भक्ति साहित्य में लोक तत्त्व; पृ.3
2. सं. राहुल सांकृत्यायन / डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ; हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास (भाग 16); ब्रज लोक साहित्य; डॉ सत्येंद्र; पृ. 4
3. डॉ. सत्येन्द्र; लोकसाहित्य विज्ञान; पृ.3
4. डॉ. श्याम परमार; मालवी लोक-साहित्य : एक सर्वेक्षण; पृ.3
5. सम्मेलन पत्रिका; (लोक संस्कृति विशेषांक) वर्ष 2010; पृ. 65
6. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय; लोकसाहित्य की भूमिका; पृ.26
7. आजकल; (लोककथा विशेषांक); सन् 1954; पृ.9
8. डॉ. श्याम परमार; भारतीय लोकसाहित्य; पृ.20
9. डॉ. सत्येन्द्र; ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन; पृ. 4
10. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय; लोकसाहित्य की भूमिका; पृ.129
11. डॉ. सत्येन्द्र; ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन; पृ.74
12. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय; लोकसाहित्य की भूमिका; पृ.36
13. वही; पृ.115
14. उद्धृत- डॉ. कुंदनलाल उप्रेती; लोकसाहित्य के प्रतिमान; पृ. 120
15. वही; पृ.115
16. रामनरेश त्रिपाठी; कविता कौमुदी; (भाग- 5); पृ.1-2
17. सूर्य किरण पारीक व नरोत्तम स्वामी; राजस्थान के लोकगीत(पूर्वाद्ध); प्रस्तावना से; पृ.1-2
18. बाबू गुलाबराय; काव्य के रूप; पृ. 123
19. चन्द्रशेखर भट्ट; हाड़ौती लोकगीत; प्राककथन; ले. डॉ. सत्येंद्र

20. हिन्दी साहित्य सम्मेलन पत्रिका; लोकसंस्कृति विशेषांक; पृ. 250
21. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय; लोकसाहित्य की भूमिका; पृ.27
22. रामनरेश त्रिपाठी; कविता कौमुदी; (भाग- 5); पृ. 45
23. डॉ. श्याम परमार; मालवी लोक-साहित्य : एक सर्वेक्षण; पृ.33
24. उद्धृत- डॉ. श्याम परमार; मालवी लोक-साहित्य : एक सर्वेक्षण; पृ.36
25. डॉ. कुंदनलाल उप्रेती; लोकसाहित्य के प्रतिमान; पृ. 180
26. डॉ. नारायण दास पुरोहित; हिमांचली लोकरंग; पृ.15
27. उद्धृत- डॉ. शेफाली चतुर्वेदी; ब्रज लोक साहित्य : नव चिंतन; पृ. 160
28. डॉ. श्याम परमार; भारतीय लोक साहित्य; पृ. 173
29. डॉ. सत्येन्द्र; लोकसाहित्य विज्ञान; पृ. 510
30. डॉ. कुंदनलाल उप्रेती; लोकसाहित्य के प्रतिमान; पृ. 180
31. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय; लोकसाहित्य की भूमिका; पृ.137-138
32. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय; भोजपुरी लोक साहित्य का अध्ययन; पृ. 14
33. डॉ. श्याम परमार; भारतीय लोकसाहित्य; पृ.11
34. डॉ हरद्वारीलाल शर्मा; लोकवार्ता विज्ञान; खंड 1; पृ. 313
35. डॉ. सत्येन्द्र; ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन; पृ. 356
36. डॉ. कुंदनलाल उप्रेती; लोकसाहित्य के प्रतिमान; पृ.135
37. डॉ. सत्येन्द्र; ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन; पृ. 381
38. आजकल; (लोककथा विशेषांक); सन् 1954; पृ. 9
39. डॉ. सत्येन्द्र; ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन; पृ.74
40. डॉ हरद्वारीलाल शर्मा; लोकवार्ता विज्ञान; खंड 1; पृ. 351
41. डॉ शेफाली चतुर्वेदी; ब्रज लोक साहित्य : नव चिंतन; पृ. 79

42. डॉ. सत्येन्द्र; ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन; पृ.75
43. श्रीमती चंद्रकला शर्मा; ब्रज के पर्वन की लोककथा; सं. मोहनलाल मधुकर; ब्रज लोक वैभव; पृ. 270-271
44. डॉ शेफाली चतुर्वेदी; ब्रज लोक साहित्य : नव चिंतन; पृ. 97
45. डॉ. चंद्रभान रावत; ब्रज की लोकगाथाएँ और कथा; पृ.14
46. डॉ. सत्येन्द्र; ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन; पृ.78
47. डॉ. सत्येन्द्र; लोकसाहित्य विज्ञान; पृ. 159
48. उद्धृत- डॉ. शेफाली चतुर्वेदी; ब्रज लोक साहित्य : नव चिंतन; पृ. 112-113
49. डॉ. श्याम परमार; लोकधर्मी नाट्य परंपरा; पृ.7
50. डॉ. कुंदनलाल उप्रेती; लोकसाहित्य के प्रतिमान; पृ.173
51. डॉ. सत्येन्द्र; लोकसाहित्य विज्ञान; पृ. 509
52. डॉ. श्याम परमार; लोकधर्मी नाट्य परंपरा; पृ.8
53. डॉ. सत्येन्द्र; लोकसाहित्य विज्ञान; पृ. 510-511
54. डॉ. कुंदनलाल उप्रेती; लोकसाहित्य के प्रतिमान; पृ. 180
55. वही; पृ. 185
56. डॉ. सत्येन्द्र; ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन; पृ.5
57. उद्धृत- डॉ. सत्येन्द्र; ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन; पृ. 75
58. डॉ. श्याम परमार; भारतीय लोकसाहित्य; पृ. 73
59. पं. शिवदयाल जोशी; लोकगीतों में रस योजना; पृ. 21
60. डॉ. सत्येन्द्र; ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन; पृ. 106
61. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय; लोकसाहित्य की भूमिका; पृ.27
62. पं. सूर्यकरण पारीक; राजस्थानी लोकगीत; पृ. 22-25

63. डॉ. सत्येन्द्र; ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन; पृ. 107-108

64. डॉ. कुंदनलाल उप्रेती; लोकसाहित्य के प्रतिमान; पृ. 238

65. डॉ. सत्येन्द्र; ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन; पृ. 137

66. डॉ. कुंदनलाल उप्रेती; लोकसाहित्य के प्रतिमान; पृ. 240

67. उद्धृत- डॉ. हरि सिंह पाल; ब्रज लोक-काव्य : सामाजिक संदर्भ; पृ. 134

68. डॉ. विष्णुदत्त शर्मा; ब्रज में विविध औसरन पै गाये जाबे वारे लोकगीत; सं. मोहनलाल मधुकर; ब्रज लोक वैभव; पृ. 33

69. वही; पृ. 33-34

70. डॉ. सत्येन्द्र; ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन; पृ. 199-200

71. वही; पृ. 208

72. वही; पृ. 208

73. डॉ. विष्णुदत्त शर्मा; ब्रज में विविध औसरन पै गाये जाबे वारे लोकगीत; सं. मोहनलाल मधुकर; ब्रज लोक वैभव; पृ. 35

74. डॉ. रामप्रकाश कुलश्रेष्ठ; ब्रज लोकगीतन में पर्व; सं. मोहनलाल मधुकर; ब्रज लोक वैभव; पृ. 65

75. डॉ. कुंदनलाल उप्रेती; लोकसाहित्य के प्रतिमान; पृ.250

76. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय; लोकसाहित्य की भूमिका; पृ.272

अध्याय 3

नारी चेतना के संदर्भ में ब्रज लोकगीत

▪ नारी चेतना से तात्पर्य :-

सृष्टि निर्माण के आधीन ईश्वर ने सर्वश्रेष्ठ निर्माण मानव का किया । तत्पश्चात मानव जीवन को दिशा देने हेतु समाज का निर्माण हुआ होगा । सभ्य समाज के निर्माता मानव हैं, समाज की रुपरेखा एवं संचालन के लिए परमपिता ने मानव को दो समुदायों में बांटा १. पुरूष और २. स्त्री। समाज को सुगढ़ और समृद्ध बनाने हेतु कुछ आयाम निर्धारित किए गए जिसमें नियम और मर्यादाओं के साथ ही श्रम का विभाजन हुआ । महिलाओं को पारिवारिक जिम्मेदारियों का बोझ मिला और पुरूष के हिस्से परिवार के पालन-पोषण का दायित्त्व मिला। समाज में नारी के लिए पुरूष समुदाय ने भिन्न-भिन्न मापदंड स्थापित किए हैं। आदर्श नारी की परिभाषा पुरुषों के संकुचित दृष्टिकोण से निर्मित है। स्त्री जन्म से लेकर मृत्यु तक किस रूप और ढंग से जीवन व्यतीत करेगी इसका फैसला पुरुष समाज आद्योपान्त तक ले चुका है। पुरुषों ने नारी को दायित्व और संस्कार के नाम से छला, उसका अस्तित्व घर की चारदिवारी के भीतर सिमट कर रह गया है। ऐसे मापदंडों का गठन पुरुषप्रधान समाज ने किया जिसमें सामजिक समानता न के बराबर है। धार्मिक एवं परंपरागत संस्कृति महिलाओं को दासता स्वीकार करने पर मजबुर करती है। हलांकि धार्मिक ग्रंथों में दर्शाए गए महिला पात्र सशक्त एवं सम्मान के प्रतीक हैं। अवसरवादी पुरुषों के द्वारा विपरीत परिष्यंद का स्त्रोत न जाने कहाँ से उत्पन्न हुआ जिसके कारण नारी के लिए समाज में अनेकों विचारधाराएं एवं नियमों की आड़ में प्रतिबंध स्थापित किए गए।

पुरुष प्रधान समाज में जीवन का आदर्श, उनके जीवन का लक्ष्य मात्र सेवा है। महिलाओं के जीवन की उपलब्धि गृहस्थ जीवन को सुख व समृद्ध बनाना है यही सबसे बड़ा धर्म है। ईश्वर ने पुरूष और स्त्री में शारीरिक भिन्नता के अलावा कुछ भी अलग नहीं बनाया है, दोनों ही अपनी-अपनी कुशलता और बुद्धि के अनुरूप कार्य करने की क्षमता रखते हैं। सत्ताधारी पुरूष ने स्त्री के लिए अलग मापदण्ड बनाए। स्त्री बाल्यावस्था में पिता पर, यौवनावस्था में पति पर और वृद्धावस्था में पुत्र पर पराश्रित रहे ऐसी परंपरा सदियों से नारी को पुरूष का गुलाम बनाए हुए है। इस अन्याय को नारी ने आर्थिक रूप से निर्बल होने के कारण ही स्वीकार किया है।

भारतीय समाज में पौराणिक युग से पुरूष ने नारी के देवी रूप की आराधना की है। धन की देवी लक्ष्मी, विद्या की देवी सरस्वती, महाकाली, दुर्गा आदि देवियों का धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान है, पुराणों में नारी के पत्नी रूप को अर्धांगिनी कह कर सम्मानित किया गया है जिसका अर्थ है पति का आधा भाग, पुरूष बिना स्त्री अधूरी है और स्त्री बिना पुरूष। सुखद गृहस्थ जीवन के लिए पति-पत्नी की आधिकारिक समानता को 'दांपत्य' कहकर संबोधित किया गया। तो कहीं न कहीं ऋषि मुनियों ने नारी को घृणा की दृष्टि से देखा। नारी को माया, मार्ग से भटकानेवाली, अग्नि आदि संज्ञा देकर नारी के अस्तित्व को अपमानित किया। स्त्री केवल साजसज्जा की वस्तु या मन बहलाने का साधन तो नहीं फिर भी हमारे समाज में नारी को तुच्छ समझा गया उसके अस्तित्व और गरिमा को पुरूषों ने पैरों तले रौंदा है। शायद इसलिए हमारी मनस्मृति आजतक परिवर्तित न हो सकी है। सदियों से चली आ रही पितृसत्तात्मक विचारधारा ने महिलाओं के अधिकारों का हनन किया है। जिस भारत देश में आदर्श पत्नी के लिए सीता माता का नाम लिया जाता है। प्रत्येक पत्नी माता सीता का आचरण धारण कर पतिपरमेश्वर की सेवा करे। सामाजिक नियमों के अनुसार 'दांपत्य' जीवन का आरंभ अनिवार्य है, किन्तु पुरूष जब किसी नारी के जीवन से जुड़ता है तो उसका एक मात्र उद्देश्य पत्नी को दासी बनाना है। वह अपने जीवन की आपूर्ति के लिए विवाह करता है। मध्यकालीन ग्रंथों पर एवं

तत्कालीन परिस्थितियों पर दृष्टि करने पर ज्ञात होता है कि नारी के स्वाभिमान, अधिकारों का हनन तो ऋषिमुनियों द्वारा स्थापित की गयी संकीर्ण और संक्रमित विचारधारा के कारण हुआ है । आदर्श नारी की परिभाषा पुरुषों द्वारा रची गई है । शास्त्रों में **"पतिसेवा गुरोवासो गृहार्थीअग्निपरिष्क्रिया"** कहा गया है। पत्नी के लिए पति की सेवा ही जीवन का एक मात्र पवित्र उद्देश्य है। सुखद दांपत्य जीवन के लिए महिलाएं यदि आत्मसमर्पण की भावना रखेंगी तो सुखी व संतुष्ट रह सकेंगी। आदर्श नारी वही है जो पति और कुटुंब की सेवा करे और ऐसी विचारधारा ही समाज को उचित बना सकती है। सुखद कौटंबिक जीवन के लिए पतिव्रता पत्नी और पत्नीव्रता पति दोनों ही आदर्श हैं। पुरुषों की इसी संकीर्ण विचारधारा के कारण ही आज समाज में नारी की स्थिति जस की तस बनी हुई है।

समाज में महिलाओं को आधिकारिक समानता और आर्थिक स्वतंत्रता के अध्ययन एवं विचार किया इस क्रांति को नारी-विमर्श कहकर पुकारा गया । नारी विमर्श का सुत्रपात पाश्चात्य देशों से हुआ जिसके बाद नारी के अधिकारों के इस आंदोलन को समग्र विश्व में फेमिनिस्म (Feminism) नाम से जाना गया । यह शब्द पाश्चात्य देशों में सन् 1895 में 'अन्तेन्वम्' पत्रिका से हुआ जिसका अर्थ महिलाओं के स्वायत्तता को स्थापित करना और अधिकारों के प्रति अग्रसर रहना यही इस फेमिनिस्म का उद्देश्य था । आंदोलनकारियों को फेमिनिस्ट (feminist) कहा गया। फ्रांसीसी साहित्यकार 'सिमोन द बोउआ' (1908-1986) ने स्त्री अध्ययन पर 'द सेकण्ड सेक्स' नामक पुस्तक लिखी। इस पुस्तक ने समग्र विश्व में नारी विमर्श की लहर चल पड़ी। "स्त्रीवादियों के अनुसार स्त्री-पुरूष समानता स्थापित करने के साथ-साथ मनुष्य के रूप में या सामाजिक प्राणी के रूप में स्त्री की अलग विशेषताएँ दर्ज करना जरूरी है। लिंग आधारित होने के कारण उसकी अलग सौंदर्यमूलक पहचान हो सकती है। अत: विरोध या विद्वेष से बढ़कर स्त्री- अध्ययन या स्त्रीवादी अध्ययन सामाजिक सुधार के उपलक्ष्य में प्रवृत्त विचार है ।"[1] नारी के संदर्भ में युक्त कदम उठाना नारी के हक लिए लड़ना ही नारी

आंदोलन है, ग्रेट ब्रिटेन एवं अमेरिका में नारी आंदोलन का सूत्रपात हुआ जिसके बाद महिलाएं हाथ में पोस्टर, बैनर लेकर सड़कों पर उतर आई। कामकाजी क्षेत्र एवं समाज में आर्थिक रूप से स्थायी होने की मांग की। अमेरिका की बैटि फ्रीडन की 'द फेमिनाइन मिस्टिक' (1963), केट मिलेट की 'सेक्सुअल पॉलिटिक्स'(1969), जेरमान गीर की 'द फीमेल युनक' (1970) आदि पुस्तकों के प्रकाशन से स्त्रीवादी दृष्टिकोण का विस्तार और व्यापक हुआ। आलोचनात्मक एवं वैचारिकी दृष्टिकोण से नारीवादी समर्थकों ने "अब हम स्त्री या पुरूष में नहीं, जन या लोक में रुचि रखते हैं"।[2] "बीसवीं सदी आठवें व नवें दशकों में आमेलिया जोन्स ने उत्तर-नारीवाद पर विशेष विश्लेषण प्रस्तुत किया। उन्होंने यौनभेद को नारीवाद के अंतर्गत शामिल करने का विरोध किया, स्त्री व पुरूष कों 'इंसान' मानने का प्रस्ताव रखा। दो हजार छह में लिखी किताब 'बेकलाश : द अन डिक्लेयर्ड वार अगेन्स्ट अमेरिकन विमन' में सूसन फलूदी ने नारीवाद के नाम पर प्रसारित मीडिया रपटों व गलत धाराणात्मक निर्मितियों पर विस्तृत नज़र डाली है।"[3] विश्वस्तरीय नारी विमर्श की चिंगारी भारत में भी समान रूप से दिखाई पड़ती है।

भारतीय हिन्दी साहित्य के अंतर्गत नारी-विमर्श एक चर्चित और ज्वलंत विषय रहा है। भारत में महिला एवं पुरूष वर्ग की समस्याएँ एवं उनके प्रभाव पाश्चात्य देश की तुलना में भिन्न हैं। यहाँ दांपत्य जीवन, कौटुंबिक जिम्मेदारियाँ सामाजिक वंशानुगत परम्पराएं नारी को दासता और आजीवन परावलंबी रहने के लिए विवश करता हैं। प्राचीन युग में अधिकांशत: भारतीय नारी को शिक्षण के अधिकार से वंचित रखा गया था जिससे वह पित्तृसत्तात्मक समाज में अपने अधिकारों के प्रति जागृक न हो सके और दासता को स्वीकार कर अपना जीवन व्यतीत करे। किन्तु आधुनिक युग में युगपत परिवर्तन आए हैं और महिलाएं शिक्षा की ओर प्रेरित हुई हैं।

भारतीय समाज में सदियों से आदर्श भारतीय नारी की छवि आत्मसमर्पण और पारिवार कों प्राथमिकता देनेवाली, पतिपरमेश्वर की सेवाधर्म करनेवाली आदि संज्ञा से संबोधित किया

गया है । माता सीता, द्रौपदी, रानी लक्ष्मीबाई, नूरजहां, रज़िया सुल्तान, मीराबाई, आदि महिलाओं का उल्लेख हम इतिहास में ज्ञात कर आए हैं के इन नारियों ने अपने आत्मविश्वास के दम पर पुरुषों को लोहे के चने चबाएं हैं। चाहे वैदिक काल हो या ऐतिहासिक काल उपर्युक्त नारियों ने अपने अधिकारों के प्रति सजग रह कर अन्याय के प्रति आवाज उठाई।

नारी सशक्तिकरण का प्रभाव भारत में सक्रिय रूप से रहा है । नारीवाद ऐतिहासिक, मध्यकालीन, आधुनिक समय में अलग-अलग संश्लिष्ट समस्याओं को लेकर आगे बढ़ता रहा है। भारत में सतीप्रथा, बालविवाह, शिक्षण, कामकाजी क्षेत्र में नारी के प्रति घृणता आदि कुप्रथाओं और विचारधाराओं के लिए महिलाओं के साथ कुछ पुरुषों ने आंदोलन किए। कई सदियों तक समाज में कुप्रथाओं के खिलाफ़ आंदोलन हुए आंदोलनकारीयों के संघर्ष के बाद इन कुप्रथाओं पर अंकुश लगा और नारी को शिक्षा, विवाह आदि भारतीय परंपरागत परिपर्णता के अधीन नारी को प्रतिष्ठा के साथ कामकाज के अवसर मिले।

भारतीय महिलाओं में शिक्षण के प्रति जागृति आई भारत में शिक्षण के क्षेत्र में आदर से सावित्रीबाई फुले, फातिमा शेख, विमला कौल आदि का नाम लिया जाता है। भारत सरकार ने नारी को शिक्षण के प्रति जागृक एवं प्रोत्साहित करने हेतु कुछ नीतियों, आयोग, समितियों, योजनाओं का गठन किया है जिनमें राधाकृष्णन आयोग(1948), माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952), दुर्गाबाई देशमुख समिति(1958), राष्ट्रीय महिला शिक्षा समिति (1958), हंसा मेहता समिति (1962), भक्त वत्सलम् कमेटी (1963), कोठारी कमीशन (1964-1966), राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) आदि उल्लेखनीय है इसके अतिरिक्त महिला सशक्तिकरण हेतु भारत सरकार ने बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ योजना, वन स्टॉप सेंटर योजना, वुमन हेल्पलाइन 1098, उज्जवला, निर्भया, नारी शक्ति पुरस्कार आदि को गठन कर महिलाओं की सहायता की है।

भारत में स्त्री चेतना का उदय लगभग उन्नीसवीं शताब्दी से आरंभ होता है आजतक भारतीय असंख्य महिलाओं ने पितृसत्तात्मक विचारधारा को खंडित कर अपनी विशिष्ट छाप विश्वपटल पर छोड़ी है। भारत में साहित्य,कला, संगीत, सिनेमा, खेल, राजनीति, आदि स्थानों से जुड़कर भारत की गरिमा में चार चाँद लगाए हैं जिनमें मैत्रेयी पुष्पा, कृष्णा सोबती, प्रभा खेतान, अमृता प्रीतम, इस्मत चुगताई, साइना नेहवाल, सानिया मिर्जा, कल्पना चावला, पी.टी. उषा, मदर टेरेसा, मैरी कॉम, इन्दिरा गांधी, प्रतिभा पाटील, द्रौपदी मुर्मू, लता मंगेशकर, दीपिका पादुकोण, प्रियंका चोपड़ा आदि सशक्त महिलाओं का योगदान है।

शिक्षित महिलाएं से ही समाज उन्नति के पथ पर अग्रसर रह सकेगा। इस बात पर पंडित जवाहर लाल नेहरु ने कहा था कि- "आप किसी राष्ट्र में महिलाओं की स्थिति देखकर उस राष्ट्र के हालात बता सकते हैं।" भारत में नारी विमर्श के उदय पर विद्वानों में एक मत स्थापित नहीं हो सका है। कुछ बुद्धिमनिषियों ने इसे पाश्चत्य से प्रेरित न मानकर पुराण-उपनिषद में वर्णित नारी के देवी रूप से नारी विमर्श का उद्भव माना है। माता सीता का भूमि में समाना नारी सशक्तिकरण की उत्तम मिशाल है। द्रौपदी का पांडवों को ललकारना महिला सशक्तिकरण का सर्वोत्तम उदाहरण है।

शिष्ट साहित्य से पृथक लोकमानव निर्मित ज्ञानकोश लोकसाहित्य में महिलाओं ने पितृसत्तात्मक विचारधारा के प्रति गीतों के माध्यम से आक्रोश व्यक्त किया है। नारी चेतना को प्रकट करते असंख्य लोकगीत विभिन्न भाषाओं में प्राप्त होते हैं।

- **ब्रज लोकगीतों में नारी वेदना :-**

- संस्कार गीत,
- ऋतु गीत,
- विवाह गीत,
- श्रम गीत आदि में पीड़ा युक्त गीतों का वर्णन

ब्रज लोकगीतों में जीवन के समग्र उच्छवन में घुलेमिले हैं । लोकमानव अपनी स्वानुभूतियों को लोकगीतों में प्रकट करता है, जीवन में सुख ही क्षणिक है अन्यथा दुख ही जीवन का साथी है। ब्रज लोकसाहित्य महासागर की भांति हैं जिसमें गोता लगाने पर विभिन्न रत्न प्राप्त होते हैं। ब्रज लोकगीत ब्रज के ग्रामीण आंचल से लोकानुभव से गीतों का निर्माण हुआ है। इन गीतों में सुख-दुःख, हास-परिहास, हर्ष-विषाद, रुदन, इच्छा, उत्थान-पतन, आशा-निराशा, राग-विराग आदि की अभिव्यक्ति के ताने-बाने गूँथे हुए स्वरमय गीतों का भंडार ब्रज में है। लोकगीत भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर है। लोकगीत मौखिक परंपरा का अनुसरण करते हुए सदियों से पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होते चले आए हैं। इन सभी गीतों को स्त्रियों ने अपने कंठ में विद्यमान रखा है। डॉ. मैनेजर पाण्डेय के अनुसार ‘‘लोकगीतों का अस्सी प्रतिशत संबंध स्त्रियों के साथ होता है। मनुष्य संकटों के बीच जीने के रास्ते खोजता है; इस रास्ते में कला और साहित्य संजीवनी की तरह है। घर में चाहे कितना भी तनावपूर्ण वातावरण क्यों न हो लेकिन परिवार की स्त्रियाँ त्यौंहार आने पर उसके बहाने सुख के क्षण ढूंढ़ ही लेती है। तरह-तरह के गीत गाकर अपने मन को संतोष देती है। इस तरह गीत यातना भरी ज़िंदगी के बीच सुख के क्षण है।"[4] जन-जीवन के उतार चढ़ाव को इन लोकगीतों के माध्यम से महिलाएं संवेदनाओं को शब्दों में गूँथ के गाती हैं और इस तरह प्रतिदिन नये लोकगीतों का जन्म होता चला आया

है। इस प्रथा के संचार को बरकरार रखने का श्रेय हमारे वृद्धों को है। जिसमें घर के बड़े-बुजुर्गों ने भी अहम भूमिका निभाई है दादा-दादी, नाना-नानी द्वारा गाये जाने वाले गीतों से बच्चों को ज्ञान मिलता है।

मानव जीवन संस्कार के वृत में अपना जीवनयापन करता है, मानव के लिए तीन संस्कार मुख्य है जन्म, मृत्यु, शादी-ब्याह। जन्म संस्कार से पहले ही गर्भाधान के सातवे माह से पुंसवन के गीत गाये जाते हैं। जन्म के बाद छठी के गीत, मुंडन के गीत, यज्ञोपवीत गीत, आदि गीत गाए जाते हैं। गर्भाधान से प्रसव तक की यात्रा को महिलाएं सोहर, सोबर या जच्चागीत है गाकर वर्णित करती हैं। समयानुसार इन लोकगीतों के परिवेश में परिवर्तन भी आए हैं। ब्रज लोकगीतों के जच्चागीत में वर्णित सास-ननंद के व्यंग्य इस प्रकार हैं-

"जच्चा तौ मेरी भोली रे भाली रे....

चार कनस्तर घी कै खाय गई

नौ मन पक्का जीरा रे

जच्चा मेरी खाना नौ जानै रे

सासुल लायी सोंठ ननदी लायी जीरा रे

ससुर लाये गरी के गोले रे

जच्चा मेरी खाना नौ जानै रे

पाँच मटुकियाँ पानी पी गई, दूध के कमन्डल सात

जच्चा मेरी पियौ नौ जानै रे

जच्चा तौ मेरी भोली रे भाली रे

साँप कूं मार बगल में दावै

बिच्छू मार सिरहाने धारा

जच्चा तौ मेरी मच्छरों से ऊ डरै रे

जच्चा मेरी..।" .

लोकगायक (मेहरुन्निसा एवं जैतुन अब्बासी)

प्रसव पीड़ा को चंद शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता है, इस समय नारी मृत्यु और जीवन के द्वार पर खड़ी होती है, बालक को जन्म देकर वंश का सुत्रपात करती है तथा जीवन के नए अध्याय का उदघाटन करती है । यह वह समय है जब परिवार के प्रत्येक सदस्य को महिला की देखभाल करना चाहिए, इस समय में महिलाएं संवेदना के साथ सहानुभूति एवं अपनत्व की भूखी होती है । वंश को आगे बढ़ानेवाली महिलाओं का भी उचित ख्याल नहीं रखा जाता है तो वे अपनी प्रसव पीड़ा में पति से शिकायत करती है-

"जच्चा टुक-टुक करै ईशारे

राजा आय जाओ पास हमारे

हमनै कई थी पीया मैया लैके आइयौ

क्या बैरै कान तुम्हारे

राजा आय जाओ पास हमारे"।

-लोकगायक (मेहरुन्निसा एवं जैतुन अब्बासी)

नारी अपने पति से कहती है कि वह इस असहाय दर्द को सहने की परिकाष्ठा को लाँग चुकी है, ससुराल में उसे कोई भी सहायता प्रदान नहीं करता है इसलिए वह कहती है कि उसकी माँ को बुला लाओ यहाँ पति अपनी पत्नी की सुनता नहीं तो वह उसको बहरा, गूंगा,अंधा आदि शब्दों का प्रयोग कर अपने क्रोध को व्यकत करती है। पुत्र प्राप्ति के लिए भी हमारे समाज में पुंसवन के संस्कार और कई टोटके किए जाते हैं किन्तु वैज्ञानिक दृष्टि से यह केवल पुरुष पर निर्भर करता है कि वह बेटा या बेटी उत्पन्न कर सकता है या नहीं। किन्तु अंधविश्वास के कारण आज भी कई ऐसे क्षेत्र हैं जहां जप-तप कर पुत्र संतान प्राप्ति की लालसा में कन्या भ्रुणहत्या को अंजाम दिया जाता है।

ब्रज में पुत्र जन्म के अवसर पर ननंद को नेग दिये जाते हैं, बालक के काजल लगाने का नेक दिया जाता है जाता है।

"मांगे मांगे ननद रानी कंगना लाला के जनै,

भैया मेरो जीवै, भतीजा मेरो जीवै

जुग-जुग जीवै तेरौ ललना,

भाभी बार-बार आऊँ तोहरे अंगना लाला के भए,

कंगना उतार हाथ भरलीना।

लाला के जनै।"

-लोकगायक (जफर)

किन्तु बहन यदि समृद्ध घराने में ब्याही है और भाई और भाभी की आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं होती है कि वह नेग दे सके तो ऐसी परिस्थितियों का उल्लेख लोकगीतों में किया गया है। इसके अतिरिक्त ब्रज में जन्म संस्कार के बाद स्त्री के मायके से छोछक आता है जिसमें समग्र परिवार के लिए उपहार, भेंट आदि दिए जाते हैं इस उपलक्ष्य में निम्नलिखित गीत है-

डाई उडि काग सुलाकने उडि मेरे पीहर जाऊं।

मेरी कहियो आय समुझाय, धीअर मांगे लाकुए।

मेरे कहिए बाबुल समझाय,बेटी तो मांगे खीचरी

मेरे कहियो बीरन समुझाय, मैना तो मांगे पियरौ

मेरी कहियो भावज समुझाय, ननदुलि तो मांगे खीचरी

बेटी नित उठ जनमोगी पूत, कहाँ ते लाउ लाडुए

लाली नित उठ जनमोगी पूत, कहाँ रे लाउ पियारौ....

-लोकगायक (जैतुन अब्बासी)

जन्म के बाद बच्चे के नामकरण की विधि होती है जिसमें बालक की बुआ नामकरण की रस्म करती है, बुरी नज़र से बचाने के लिए काले धागे में काले-सफ़ेद मोतियुक्त लड़ी पहनाते हैं जिसे नज़रबंद (नजरियाँ) भी कहते हैं। बच्चे के जरुले बाल उतरवाने की रस्म को 'मुंडन' कहा जाता है। जिसे ब्रज लोकजीवन में 'जनेऊ संस्कार' के नाम से जाना जाता है। जिसके संबंध में गीत प्राप्त होते हैं।

ब्रज लोकगीतों की विविधता और बहुलता का प्रमाण बहुत अधिक है। लोक जीवन का ऐसा कोई पहलू नहीं है जो ब्रज लोकगीतों की परिधि में न समाया हो। ब्रज लोकगीतों में तीज-त्यौहार के गीत,शादी-ब्याह के गीत, कृषि संबंधित गीत,देवी-देवताओं के गीत आदि प्राप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त सामाजिक गीतों में समाज सुधारक गीत भी प्राप्त होते हैं, जिनमें परिवार नियोजन, बाल-विवाह, दहेज-प्रथा, देश-प्रेम, नारी जागृति, भ्रष्टाचार आदि विषयों पर भी गीत मिलते हैं। पारिवारिक और कौटुंबिक जीवन को सुखद रखने के हेतु स्त्री अनेकों प्रयास करती है। पति-पत्नी, सास-बहू, भाभी-ननंद, सास-ससुर, भाई-बहन, आदि संबंध की डोर एक जगह बंधी है जिसे हम परिवार कहते हैं। ये संबंध कोमल और मधुर होने के साथ-साथ कटाक्ष और यातना से भी लिप्त होते हैं। पति-पत्नी के ऐसे ही संबंधों की वेदना का चित्रण बारहमासा के आधार पर वर्णित है –

"स्याम बिना मोय कल न परै री,

माघ मास रितु आयौ वसंत, अजहूँ न आयौ पिया तेरौ अंत।

लिखौ कैसे पाती को लैके जाय,को निरमोही कूं बतावै समुझाय

फागुन मैं सब घोरे अबीर, मै कैसे धोरूँ बिन जदुवीर।

जरौं जैसे होरी उठत जैसे लूक, बिरह आगिन तन दीन्हौ है फूँक।

चैत मास बन फूले हैं फूल, हमरौ बलम हमें गयौ है भूल।

सावन मास गरब गंभीर, हमारे नैन भरि आये हैं नीर।

जिया मेरौं डूबै उतराय, हमरौ खिवैया परदेसन छाय।"[5]

प्रस्तुत ब्रज गीत में नारी की विरह वेदना को व्यक्त करती है चैत मास उपवन में तरह-तरह के पुष्प खिलते हैं किन्तु पति उसे भूल गया है। सावन की रिमझिम वर्षा में अश्रु बह रहे हैं जैसे नदियों में बहता नीर। उसका दिल डूब रहा है ऐसे परदेस जाके उसका पति उसे भूल गया है। नारी जीवन में दु:ख की बदली सावन में ही नहीं अपितु समग्र वर्ष बारहमास बरसती है।

ब्रज लोकगीतों में ऋतुपरक गीत विशिष्ट अवसर, त्यौहार पर गाये जाते हैं। ब्रज में फागुन और सावन के मास में मनाये जानेवाले लोकोत्सव में होली प्रख्यात है फाग के लोक आराध्य राधाकृष्ण, गोपी, ग्वालबाल आदि के वाद-संवाद युक्त गीतों में मस्ती की लहर, विनंती, छेड़खानी, शिकायत आदि विषय वस्तु इन गीतों में प्राप्त होती है। सावन में महिलाएं विशालकाय वृक्ष की शाखाओं पर झूले डालते हैं और सखियों के साथ समूह में झूला-झूलते समय महिलाएं गीत गाती हैं-

ननंद-भाभी के संबंध में निम्नलिखित गीत है;

"ननदी गलियन-गलियन रै

मनिरा डोलता है।

ननदी मनिरा कौ लियौ बुलवाय

चूड़ी तो मेरी जा

न है चूड़ा हाथी दाँत का

काली तौ चूड़ी रै मनिरा नै पहनौ,

अरै मनरा काले तो मेरे राजा जी के केस

मेरे सैंया जी के केस रै

चूड़ी तो मेरी जान है....

काली तो चूड़ी रै मनिरा नै पहनौ

भूरी तौ चूड़ी रै मनिरा नै पहनौ।

रै मनिरा मेरे सैया जी के रे

चूड़ी तो मेरी जान है चूड़ा हाथी दाँत का....।”

-लोकगायक (मेहरुन्निसा एवं जैतुन अब्बासी)

प्रस्तुत गीत के माध्यम से महिलाएं अपने ननंद पर व्यंग्य करती हैं कि चूड़ी पहनाने वाले मनिहार से वे ऐसे रंग नहीं लेंगी जो उनके पति को नापसंद हो। भारतीय संस्कृति के अनुसार परिण्य सूत्र में बंधी स्त्री को पति के लिए श्रृंगार करना अनिवार्य होता है। स्त्री के विवाहिता होने के यह संकेत है जिसमें माथे पर सिंदूर, बिंदी, हाथों में काँच की चूड़ियाँ, पैरों में बिछिया आदि को धारण कर वह विवाहिता के रूप को संपूर्ण करती हैं। चूड़ी भारतीय नारी की जान है और प्रस्तुत गीत में नारी रंगों के नाम लेकर पति से उनकी तुलना करती है और हाथी दाँत का चूड़े की इच्छा ज़ाहिर करती है। इन सभी गीतों को महिलाएं इतने मर्म से गाती हैं के वेदना का सजीव चित्रण करती हैं।

सावन का एक गीत जिसमें भाई-बहन के पावन और स्नेहादिल संबंध का चित्रण किया है।

“बाजरे के खेत में दोय चिड़ियाँ चूँ-चूँ करती थी

इदर से देखूँ विदर से देखूँ मेरे कौन से भैया आय रै हैं,

क्या-क्या सौदा लाय रै हैं

मेरे (नाम) भैया आय रै हैं संग में का का लाय रै हैं,

माँ को जोड़ा, बहन को चुंदरी, भाभी को चूड़ी लाय रै हैं

इदर से देखूँ विदर से देखूँ मेरे कौन से भैया आय रै हैं।"

-(फिरदौस साबिर खान)

इसके अतिरिक्त ससुराल में यातनाओं को झेल रही महिलाएं अपनी वेदना को करुणामय स्वर में इस प्रकार व्यक्त करती है-

"उड़ि-उड़ि कागा मेरे पीहर जाओ लाओ खबर माई-बाप की

जो तक तो कागा मेरौ उड़ान न पायौ वीर लिबउआ बे आ गये,

चन्दन की चौकी मेरे भैया जो बैठे बात साजन से करी रये।

भेजौ रे भेजौ जीजा भैन हमारी, संग की सहेली झुलै बाग में..।"[6]

प्रस्तुर गीत में बहन और भाई के रुदन का उल्लेख है, बहन कौए से कहती है मायके जाकर माता-पिता का समाचार लाओ जब कौआ उड़ न सका तब तक भाई द्वार पर पहुँच गया बहन विदा कराने को भाई जीजा से अनुमति मांगता है जीजा अनुमति नहीं देता हैं और वह ससुराल में पंखहीन पक्षी की तरह छटपटा कर रह जाती है।

ब्रज लोकगीतों में विवाह संबंधी गीतों में हर्ष, उत्साह, मौज-मस्ती, छेड़खानी, हास्य-व्यंग्य, आदि भावों का समायोजन होता है जो विवाह के संस्कारों में झलकती हैं। ब्रज में भात गीतों में नारी वेदना का ऐसा चित्रण है जिसे सुनकर हृदय आप्लावित हो उठता है। यह लोक गीत भ्राताविहीन नारी अपनी वेदना रूपी चेतना को इस प्रकार प्रकट करती है-

"मेरे बाबुल जोगी माँ जूनागढ़ में भात

सासुलिया रानी मौसे गरब के बोल मति बोलै,

मेरे नाय हैं भतीजे... नाय हैं मैया के जाये

वीरन मेरी माँ है जशोदा मोकूं जन्म देकै है गई बांझ,

मेरे बाबुल जोगी......।

जिठानिया रानी मौसे गरब के बोल मति बोलै,

मेरे नाय हैं भतीजे नाय है मैया के जाये

वीरन मेरी माँ है जशोदा मोकूं जन्म देकै है गई बांझ,

मेरे बाबुल जोगी......।"

दैरानिया रानी मौसे गरब के बोल मति बोलै,

मेरे नाय हैं भतीजे नाय है मैया के जाये

मेरी माँ है जशोदा मोकूं जन्म देकै है गई बांझ,

मेरे बाबुल जोगी......।"

-लोकगायक (मेहरुन्निसा एवं जैतुन अब्बासी)

प्रस्तुत गीत भ्राताविहीन नारी के संदर्भ में हैं इस गीत के माध्यम से ससुराल में भात न आने पर वह अपने रुदन को प्रकट करती है, सास, जिठानी, देवरानी, ननंद सभी को कहती है कि मुझसे घमंड के बोल न बोलो मैं अपनी माता की एकलौती संतान हूँ मुझे जन्म देकर मेरी माँ जशोदा मैया की भांति बांझ हो गई। इस गीत में समाज की खोख़ली परंपरा और भाई न होने पर बहन को दिए गए कष्टों का उल्लेख है। समाज में कुछ समुदायों की आज भी दूषित एवं संकीर्ण मानसिकता है, पराये धन को दहेज और अन्य दकियानूसी रिवाजों के नाम से लूटना चाहते हैं। भात में भाई कीमती आभूषण, भेंट, अन्य मूल्यवान वस्तुएं उपहार में लाते हैं।

जिसका भाई नहीं है उसके मायके से भात नहीं आएगा तो ससुराल में उसे ताने देकर प्रताड़ित किया जाता है, इस गीत में ऐसी ही परिस्थिति का वर्णन वेदना रूपी स्वर से किया गया है।

ब्रज लोकगीतों शादी-ब्याह के गीतों में हल्दी, मेहँदी, तेलचढ़ाई, भात गीत आदि रस्मों के अनुरूप गीत गाये जाते हैं। शादी के गीत का उत्तम उदाहरण प्रस्तुत है-

"कदम चुम्ने को चाँदनी आय रै है

काँच के पियाले मै शबनम कै मोती

अर्से बरी से छिलर मँगाए

काँच के पियाले मै शबनम कै मोती

मेरे घर मै बन्ने बन्नी आय रै है..

काँच के पियाले मै शबनम कै मोती

कदम चुम्ने को चाँदनी आय रै है

अर्से बरी से मैंने सेहरा मँगाया

अर्से बरी से मैने जोड़ा मँगाया

बांधौ मेरे बन्ने बरी आय रै है

काँच के पियाले मै शबनम कै मोती

कदम चुम्ने को चाँदनी आय रै है।"

-जैतुन अब्बासी

विदाई के समय गाये जानेवाले लोकगीतों में करुण भाव चरम सीमा पर होता है जिन्हें सुनकर करूणालिप्त हृदय भर आता है और सबकी आँखों को नम हो जाती हैं। विवाह गीतों के उमंग के अतिरिक्त विदाई बेला पर गाये जानेवाले विदाई गीत नारी की अशेष वेदनाओं के घनीभूत आवरण से घिरे हुए हैं। विदाई गीतों में करुण रस की अधिकता के कारण ऐसा कोई हृदय नहीं जो रुदन से भावविभोर होकर रोने लगते हैं, ये ऐसे गीत होते हैं जिससे सबको अपना अतीत वह क्षण याद आ जाता है जब वह भी अपने पीहर से ससुराल गई थी।

"काहे कौ ब्याही बिदेस रे सुन बाबुल मेरे,

हम तौ बाबुल तेरे अंगना की चिरिया चुगत-चुगत उड़ि जायै रे

हम तौ बाबुल तेरे खूंटा की गैया रे जितै हांकों हांक जायै रे...

सुन बाबुल मोरे...

भइयों कौ दीनै हैं मेहल दुमहला हमकौ दियौ परदेस रे....।"

(फिरदौस साबिर खान)

प्रस्तुत गीत में बेटी और पिता के संबंध का मार्मिक चित्रण किया है, इस गीत में बेटी अपने पिता से विदेश ब्याह ने की बात कर रही है नारी स्वयं तुलना चिड़िया और आँगन में बंधी गाय से करती है, पिता से कहती है वह आदर्श एवं आज्ञाकारी बेटी है, जहां भी विवाह करोगे वह परिणय सूत्र से बंध जाएगी किन्तु उसे परदेश क्यों ब्याह दिया ऐसे कटु प्रश्न कर अपनी परिस्थिति को व्यक्त करती है। भारतीय परंपरा के अनुसार पिता की संपत्ति में पुत्र संतान का अधिकार है उसके बाद समग्र संपत्ति का वारिस वही है। अत: लड़कियों को विवाह के समय दहेज देकर उन्हें उनका हक दिया जाता है। उपर्युक्त गीत में पिता ने पुत्र को घर और संपत्ति दी और बेटी का विवाह दूर परदेश में किया। इस गीत के माध्यम से अपनी वेदना को व्यंग्य माध्यम से प्रकट करती है।

ब्रज लोकगीतों की संपदा में श्रमगीतों का प्रमाण बहुत अधिक है लोकगीतों में विविध कार्य करता लोकमानव अपने परिश्रम के बोझ को कम करने के लिए अनायास ही गीत गाने लगता है, इन गीतों में लोकनुभाव से गीत गायें जाते हैं, ग्रामीण किसान खेतों में अथक परिश्रम कर फसल उगाते हैं अन्य ऋतुओं की तुलना में ग्रीष्म ऋतु में यह कार्य कठिन है, रोपनी गीत गाये जाते हैं वहीं महिलाएं घर पर चक्की चलाते समय गीत गाती हैं, ओखली मूसल चलाते समय गीत गाती हैं, ग्रामीण जीवन के अथक परिश्रम एवं जीवनयापन की कठिन परिस्थितियों के वर्णन श्रम गीतों में मिलता है।

निम्नलिखित गीत ससुराल में चक्की पीसते समय किए जानेवाले श्रम को व्यक्त कर रहा है-

"पाँच पसेरी रे भैया पीसनौ

अरे भैया ज्याय पीसतई दिन जाय

कहत दु:ख वीर सो।"[7]

ससुराल में मुख्यत: बहू को सास और ननंद द्वारा मानसिक और शारीरिक रूप से कष्ट दिये जाते हैं। नारी आजीवन बिना किसी अपेक्षा के ससुराल के प्रत्येक व्यक्ति की सेवा करती है तथा कौटुंबिक जीवन को सुखद बनाने के प्रयास करती है। फिर भी कुछ घरों में आज भी बहू से उसकी क्षमता से अधिक घरगथ्थु कार्य काराए जाते हैं ऐसी ही विषम दृष्टिकोण को उपयुक्त गीत में प्रस्तुत किया गया है। इस गीत में बहन अपने भाई से अपने दैनिक कार्य के कठिन श्रम को व्यक्त करते हुए कहती है कि पाँच पसेरी अनाज उसे चक्की से पीसना होता है जिसमें उसका सारा दिन गुज़र जाता है, चक्की चलाने में अधिक परिश्रम है इसका कष्ट तो वो ही समझ सकता है जिस पर यह बीता हो हम चंद शब्दों में इस पीड़ा का वर्णन नहीं कर सकते हैं, ऐसी कष्टदायक परिस्थिति को अपने भ्राता को याद करते हुए अपनी मनोदशा और श्रम के बोझ कम करने के लिए इस गीत में प्रकट किया गया है।

नारी वेदना का चित्रण उपयुक्त गीतों में चेतना के स्वर के साथ प्रस्तुत किया है। आधुनिक युग नारी आज भी ऐसी परिस्थितियों से जूझ रही है। आज जीवन के मूल्य, रहन-सहन, तथा परिवेश बादल चुका है। फिर भी नारी की स्थिति में कोई सुधार नहीं है। नारी का जीवन पति एवं परिवार की सेवा में दासी के रूप में व्यतीत होती है। इस दासता को नारी ने अपना भाग्य समझा। स्वामी और दास की परंपरा शुरू हो गई, समयान्तर के बाद शिक्षण की ओर जागृत होकर नारी अपने अधिकारों के लिए खड़ी हुई और अपने ऊपर हो रहे अत्याचारों के खिलाफ आवाज उठाने लगी। लोकगीतों में वेदना को महिलाएं प्रकट करती हैं।

▪ **ब्रज लोकगीतों में नारी चेतना का स्वर**

ब्रज लोकगीतों में नारी जीवन की विविध समस्याओं का उल्लेख मिलता है। जिसमें सामाजिक समस्याएं, पारिवारिक समस्याएं, व्यक्तिगत समस्याएं, आर्थिक समस्याएं आदि को लोकगीतों के माध्यम से प्रकट करने में महिलाएं सफल हुई है। वैदिक काल से ही नारी की स्थिति अति दयनीय रही है। भारतीय समाज सदियों से पितृसत्तात्मक विचारधारा को ढ़ोहता चला आ रहा है, पितृसत्तात्मक सोच ने नारी के अस्तित्व और अधिकारों का हनन किया है। जन्म से लेकर मृत्यु के पश्चात मोक्ष प्राप्ति तक पुरुषों पर पराश्रित रहती हैं, आर्थिक रूप से पूरी तरह पुरूषों पर निर्भर रहना यह हमारी संकीर्ण और संक्रमित विचारधारा का परिणाम है के आज भी नारी सशक्त न हो सकी है। कौमर्यावस्था से वृद्धावस्था तक नारी के संघर्ष की यात्रा चलती रहती है। इस सफर की पीड़ा, वेदना असीम है नारी के संघर्ष उसकी प्रौढ़ावस्था से ही प्रारंभ हो जाते हैं, विवाह न होना, कद कम होना, श्याम रंग होना, आदि समस्याओं से नारी का अस्तित्व जुझता रहा है। विवाह से बाद ससुराल और पति द्वारा प्रताड़ित किया जात है, सास द्वारा दी गई पारिवारिक जिम्मेदारियों को नारी संघर्षशील होकर निभाती है। लोकगीतों में ऐसी न जाने कितने अत्याचारों से पीड़ित महिलाओं के कष्टों का उल्लेख मिलता है। त्याग, प्रेम, बलिदान, कुंठा, तनाव, भटकाव इत्यादि विषयवस्तु लोकगीतों में मुख्यत: प्राप्त होती है। ससुराल में सास-ननंद द्वारा बहू अनगिनत यातनाओं से अवगत कराया जाता है आदर्श नारी वही है चुपचाप अपने ऊपर हो रहे अत्याचारों को सहती रहे किन्तु लोकगीतों में जनजीवन की अखंड संपत्ति है, और इन्हीं को माध्यम बनाकर अपनी नारी चेतना को प्रकट करती है, यहाँ पढ़ी-लिखी स्त्रियों का वाग्जाल नहीं है यह तो अशिक्षित नारी है जो स्वानुभूति को स्वरमय कर अपनी वेदना को प्रकट करती है। ब्रज लोकगीतों में नारी की वेदना चेतना रूपी स्वर से व्यक्त हुई है।

पारिवारिक विघटन और संबंधों के संदर्भ में ब्रज के निम्नलिखित लोकगीत हैं-

"ननदुल तेरौ जइयो नासु कै रावनु कौरे पै कढ़वायौ

भैयन कूं दिखराइ कै हमकूं वनोवासु दिलवायौ।"[8]

पारिवारिक संबंधों की प्रगाढ़ भावना और परस्परिक स्नेह का चित्रण विभिन्न लोकगीतों में मिलता है। ब्रज लोकगीतों अंतर्कथाओं का सुंदर प्रयोग मिलता है, ससुराल में ननंद की भूमिका अहम होती है, भाई-भाभी के संबंधों को बिगाड़ने का प्रयास मुख्यत: ननंद द्वारा ही होता है, प्रस्तुत गीत में लोकप्रचलित संदर्भ को माध्यम बनाकर सीता की ननंद ने रावण और सीता को एक साथ राम को दिखा दिया जिसके राम ने क्रोधित होकर सीता को घर से निकाल दिया। वैदिक संदर्भों की आड़ में महिलाएं अपनी आपबीती को गीत के माध्यम से प्रकट करती है।

अधिकांश लोकगीतों की भावभूमि महिलाओं के निजी अनुभव से प्रेरित होती है, इन गीतों में नारी मन की प्रत्येक अनुभूति का विवरणात्मक उल्लेख मिलता है। पति-पत्नी के संबंध प्रेम, मस्ती, छेड़खानी के साथ तनाव, कुंठा, मनमुटाव से युक्त ब्रज लोकगीत प्राप्त होते हैं। गृहिणी का जीवन हो, कामकाजी महिला का अनेक मुश्किलों और उलझनों से घिरा हुआ है जिसका उल्लेख नारी द्वारा जीवन के दु:ख-सुख, विरह वेदना, पारिवारिक विघटन, पितृसत्तात्मक विचारधारा के प्रति आक्रोश आदि भावों को लोकगीतों में प्रकट किया। गेयात्मक रूप में नारी की चेतना व्यंग्य के सहारे प्रकट हुई है। पति द्वारा पत्नी को अनेकों रूप से प्रताड़ित किया जाता है इन सभी वेदनाओं का वर्णन ब्रज लोकगीत में प्राप्त हुआ है।

"चिड़ी तौय चामलीया भावै

घर की नारी छोड़ पिया जी

कूं पर नारी भावै

सहर के सोय गए हल्वाइया

अब तोय मुखड़ा खोल कलाकंद लाय दों प्यारी ।"

-नगमा बानो

प्रस्तुत लोकगीत नारी अपने पति पर व्यंग्य करते हुए कहती है कि उसे अपनी पत्नी का सलौना रूप नहीं भाता उसे बाहर की तिरिया चरित्र वाली नारी सुहाती है, स्त्री और पुरुष के लिए चरित्रवान होना एक गुण और संस्कार है लेकिन कुछ महिलाएं और आदमी इसे ताक में रखकर अर्थात् चरित्रहीनता को अपना मनोरंजन का साधन बना लेते हैं। अपनी पत्नी को सताने हेतु पुरूष यहां-वहां मुँह मारता फिरते हैं। इन लोकगीतों से पत्नी अपने पति के लिए कटाक्ष भाव प्रकट करती है। लोकगीतों की गुणवत्ता और रसात्मकता को सजीव रखने का श्रेय हमारी माँ-बहनों को है । हास्य-व्यंग्य कर नारी अपनी चेतना को प्रकट करती है, बचपन से ही अभिव्यक्ति के अवसर की खोज में रहनेवाली महिलाएं अपनी सारी कथा हास्य-व्यंग्य के माध्यम से कह देती हैं। ब्रज की नारी हास्य रस में दो कदम आगे है। खोरीया,नाच एवं गारी गीतों के कुछ उदाहरण निम्नानुसार हैं-

"छोरा लै चल खाट वरी के नीचै तेरी व्यार करौंगी रे

सासऊ सोवै ससुराऊ सोवै

दैया मेरी लाग गई आँख

बलम मेरे कौ भीडया लैगा

सासऊ ढूँढे ससुराऊ ढूँढे

दैया मेरा ढूँढे सींघ

सवेरा होते ही और करूँगी रे...

छोरा लै चल खाट वरी के.....

जेठउ ढूँढे जिठनी उ ढूँढे

दैया मेरा ढूँढे सींघ

सवेरा होते ही और करूँगी रे...

छोरा लै चल खाट वरी के नीचै तेरी व्यार करौंगी रे।"

लोकगायक -(मेहरुन्निसा एवं जैतुन अब्बासी)

प्रस्तुत गीत में नारी अपने पति को पेड़ के नीचे प्रेम के मूल्यवान क्षण बिताने को कहती है और ग्रामीण क्षेत्रों में भीषण गरमी होती है बिजली का कोई ठिकाना नहीं होता इसलिए अधिकांश लोग छायादार वृक्षों के समीप रहकर राहत पाते हैं इस गीत में ऐसी ही परिस्थिति का वर्णन है पति की हवा करते-करते उसकी आँख लग गई और पति को भेड़िया उठा ले गया सास-ससुर, अन्य परिवार के सदस्य पति को ढूंढने जाते हैं लेकिन यहां नारी व्यंग्य के माध्यम दूसरा विवाह करने की चेतावनी देती है। इस गीत में पति के दूसरा विवाह या अन्य नारी के साथ नाजायज रिश्तों पर व्यंग्य है जिससे महिलाओं को आजीवन डर के साये में रहना पड़ता है न जाने कब ये दूसरा विवाह कर ले अन्य किसी स्त्री से संबंध न बनाले ऐसी स्थिति से नारी मानसिक उत्पीड़न का शिकार होती है। इस गीत में नारी की चेतना कहती है की वह दूसरा विवाह करेगी और पति को नहीं ढूंढेगी।

खोरीया नाच का देवर-भाभी प्रसंग का के सुंदर गीत इस प्रकार है –

"लगैयौ दैवर अंगना मै बबूली रे

जब बबूली हम सूतन चले रे

लगा है दैवर उंगली में काँटा रे...।

लगैयौ दैवर अंगना मै बबूली रे

पाँच रुपैया दैवर हौम तोय दिंगै

निकारौ देवर उँगरी का काँटा रे...।

लगैयौ दैवर अंगना मै बबूली रे

पाँच रुपैया भाभी हम नाय लिंगै

न निकारै उँगरी का काँटा रे...।

लगैयौ दैवर अंगना मै बबूली रे

आज जो भैया तेरा घरै होता

कराती देवर पसुलियन कै टुकरे रे

लगैयौ दैवर अंगना मै बबूली रे.......।"

लोकगायक - (जैतुन अब्बासी)

इस गीत में देवर-भाभी कथोपथन हैं । ब्रज क्षेत्र में खोरीया नाच में महिलाएं नाटक खेलती है और पुरुष का स्वांग करती हैं इन गीतों में गाली गलौज के साथ शादी के बाद नारी

के साथ होनेवाली परिस्थितियों का विवरण मिलता है। इस गीत में भाभी देवर से मिन्नतें करती है के उसकी ऊँगली में लगे काँटे को निकाल दे लेकिन देवर उसको दुनिया भर के बहाने बताता है और उसकी मदद नहीं करता है। जिस पर आक्रोश में आकर भाभी कहती है के आज तुम्हारा भाई घर होता तो तुम्हरी पसुली से टुकड़े करवा देती।

पति-पत्नी के हास्य-व्यंग्य का सुंदर उदाहरण-

"मेरे राजा रोये रात कढ़ी कै मारे,

सासुल लाई लकरी ननदी लाई कंडे

मेरे राजा लाए आग कढ़ी के मारे

मेरे राजा रोये..........।

सासुल लायी हरदी ननदी लायी धनिया

मेरे राजा लाये मिर्च कढ़ी के मारे

मेरे राजा रोये..........।

सासुल लायी थरिया ननदी लायी बेल

मेरे राजा लाये नांद कढ़ी के मारे

मेरे राजा रोये..........।

सासुल फूँकै अंगूरी ननदी फूँकै पौंचा

मेरे राजा चाटे मोंछ कढ़ी के मारे

मेरे राजा रोये..........।"

लोकगायक - (मेहरुन्निसा एवं जैतुन अब्बासी)

भारतीय परंपरा में सुसंगत विवाह को अधिक महत्व देते हैं जिसमें माता-पिता द्वारा अपने बच्चों के लिए जीवन साथी का चयन किया जाता है। ग्रामीण लोकजीवन में विवाह दो मानव का नहीं दो परिवारों का मेल है किन्तु कई बार अनमेल विवाह की समस्या से न जाने कितनी ही स्त्रियों का जीवन नरक बन गया है। अनमेल विवाह की समस्या को निम्नलिखित गीत में वर्णित किया गया है-

"जा बावरै से लगुन लिखाय गई मेरी मैया

एक मरा सा पड़रा खूँटे से बंधवाय गई मेरी मैया

जे हल जोतन कौ है जाएगौ नों कह गई मेरी मैया

जा बावरै से लगुन........।

एक मरा सा लल्ला गोदी में धरवाय गई मोरी मैया

जे नाम चलन कौ है जाएगौ नों कह गई मेरी मैया।

जा बावरै से लगुन........।

एक फटा घुटन्ना पेटी में रखवाय गई मोरी मैया

जे आन जान कौ है जाओगों नों कह गई मेरी मैया।

जा बावरै से लगुन........।"

लोकगायक -(मेहरुन्निसा एवं जैतुन अब्बासी)

लोकगीतों का आशय लोकजीवन की गहराई से जुड़े हुए उन लोकनुभाव से है जो जीवन के हर एक क्षण में व्याप्त है। लोकजीवन का सार लोकसाहित्य है लोकगीत समाज का अभिन्न अंग है और समाज में संस्कृति का प्रचार-प्रसार लोकगीतों के बिना असंभव है। लोकगीत जीवन के लिए दुरूह आवश्यक है। सोलह संस्कार के समय मंगलोत्सव पे गाये जाते हैं वे संस्कार गीत हैं, गर्भाधान से प्रसव तक की यात्रा का वर्णन लोकगीतों में मिलता है। महिलाएं अक्सर अभिव्यक्ति के अवसर ढुंढ़ती रहती हैं ऐसे मौको पर उपदेश के साथ ही अपने चेतना रूपी संदेश को गीतों के अखरे से गाकर व्यक्त करती हैं।

"जे घर कन्या होय अछूतौ नाँय खाइयौ।

जे घर लक्ष्मी होय उधारौ नाँय लाइयौ।

जे घर दीपक होय अंधरों नाँय रहियौ।

जे घर गोरस होय तौ रुखौ नाँय खाइयौ।

जे घर घोड़ी होय तौ पैदल नाँय जाइयौ।

जे घर भैया होय अकेलौ नाँय चलियौ।"[9]

ब्रज में सोहर के समय पर गाये जानेवाले गीत का एक उदाहरण उपर्युक्त दिया गया है, इस गीत के माध्यम से सामाजिक मूल्य और मान्यताओं का महत्व धार्मिक रूप से बताया गया है भारत में कन्या का जन्म अर्थात लक्ष्मी आगमन जिसे धन-संपत्ति से संबोधित किया जाता है। पुत्र जन्म के अवसर पर गीत गाना और ब्रज में घरों में उत्सव का माहौल होता है किन्तु वहीं कन्या के जन्म पर गीत गाना और अन्य संस्कार कर्ण छेदन आदि करना ऐसे दर्शन दुर्लभ हैं।

"जब लाडो तैने जन्म लियौ भई अंधेरी रात।

जिस दिन बाबुल जन्म भयौ भई उजेरी रात।

एक सौ इकसठ दिये जले, महलों में जगमग हुई हौंस की रात।

जा दिन लाडो ने जन्म लियौ, सवा हाथ धरती धँसी।

दादा-दादी रिंज भयौ , चाची ताई को रिंज भयौ।"[10]

प्रस्तुत गीत में कन्या जन्म पर शोक का चित्रण किया है इस गीत के अनुसार बेटी के जन्म हों एसे अंधेरा हो गया यदि पुत्र होता तो उजाला होता और महल में एक सौ इकसठ दीये जलाकर जगमग रोशनी होती लड़की के जन्म होने के कारण परिवार के सदस्यों को दु:ख हुआ है। ग्रामीण लोकमानव अशिक्षित, असभ्य है फिर भी कन्या भ्रूणहत्या को नहीं सराहता उसे वह जघन्य अपराध समझता है। लेकिन शिष्ट समाज का शिक्षित आधुनिकता का चोला पहने लोग गर्भाधान में चिकित्सा के बहाने से लिंग परीक्षण कर कन्या भ्रूणहत्या को अंजाम देते हैं। ग्रामीण समाज की तुलना में शिष्ट समाज में पुत्र प्राप्ति की लालसा एवं कन्या भ्रूणहत्या के मामले अधिक देखने को मिले हैं।

"बाबाजिन हैंकें निकरि जाऊँगी सास तेरे बोलन पै

हाय वैरागन हैंकें निकरि जाऊँगी सास तेरे बोलने पै

यों मत जानें सासुल नंगी चली जाऊँगी

तेरे बेटा पै चूनर मंगाय लाऊँगी। सास तेरे बोलने पै......।

यों मत जानें सासुल भूखी चली जाऊँगी

तेरे बेटा पै रबड़ी मंगा लाऊँगी, सास तेरे बोलने पै......।

यों मत जानें सासुल घरै छोड़ि जाऊँगी

अपने हिस्सा कें तारौ लगाय जाऊँगी। सास तेरे बोलने पै......।

यों मत जानें सासुल इकली चली जाऊँगी

तेरे बेटाय संग में लै जाऊँगी। सास तेरे बोलने पै......।"[11]

इस गीत में सास की क्रूरता का उल्लेख किया है, विवाह के बाद ससुराल पक्ष के पुरुष व स्त्री बहू को कष्ट देना जन्मसिद्ध अधिकार समझते हैं, कितने ही घरों में नवविवाहिता के कंधो पर पारिवारिक कामकाज के बोझ को लाद दिया जाता है। जिसे कई महिलाएं निभा नही पाती और आत्महत्या के लिए बाधित हो जाती हैं। सास-ननंद एवं पति द्वारा उसे रोज अलग-अलग यातनाएँ दी जाती है। अपनी ऐसी स्थिति को वो बदल तो नहीं सकती किन्तु अपनी दारुण अवस्था को लयात्मक रुप से लोकगीत से प्रस्तुत करती है। इस गीत में बहू सास से कहती है कि वह उसके निकालने पर घर छोड़ के नहीं जाएगी यदि गई तो अपने हिस्से में ताला लगाकर अपने पति को भी साथ ले जाएगी। यहाँ नारी ने अपनी चेतना का परिचय दिया है जिसमें वह सास को अपने पुत्र से दूर करने की धमकी देती है।

"सखि री अनपढ़ कूं ब्याह दई जिन्दी रहूँ कि मर जाऊँ

जेठ मेरौ है गयौ एम. ए. पास, देवर मेरौ है गयै बी. ए. पास

अरी बू तौ गूँठा टेका - जिन्दी रहूँ कि मर जाऊँ......

जेठ मेरौ ऑफिस कूं जावै, देवर मेरौ दफ्तर कूं जावै

अरी बू तौ हर पै जावै,- जिन्दी रहूँ कि मर जाऊँ......

जेठ मेरौ है गयौ थानेदार, देवर मेरौ बनि गयौ तहसीलदार

अरी बू तौ मुँह कौ देखा,- जिन्दी रहूँ कि मर जाऊँ......

जेठ मेरौ लावै पाँच हजार, देवर की इतरावति नारि

सखी बू तौ जेब टटोरा,- जिन्दी रहूँ कि मर जाऊँ......

साक्षर करि रही है सरकार, केंद्र पै पहुँच छोड़ हर फार

देख तोय पढि जाय छोरा,- जिन्दी रहूँ कि मर जाऊँ......"[12]

इस गीत में अनमेल विवाह कि समस्या को दर्शाया है, इस गीत में अनपढ़ के साथ विवाह होने के बाद आर्थिक और सामाजिक समस्याओं से किस प्रकार नारी का अस्तित्व जूझता है उसका चित्रण है। पारिवार में जेठ, देवर पढ़ लिखकर उच्च शिक्षण एवं योग्यता के आधार पर सरकारी नौकरी पर नियुक्त होकर समृद्ध जीवन व्यतीत करते हैं। जबकि उसका अनपढ़ पति खेतों में हल चलाकर खाली जेब टटोलता रह गया। यहाँ नारी अनमेल विवाह और शिक्षण की अनिवार्यता पर व्यंग्य कर अपनी चेतना को व्यक्त करती है।

सास-बहू का झगड़ा अनायास छोटी-छोटी बातों पर हो जाता है और तुच्छ बातों के लिए बहू को उसके मायके और माँ-बाप के लिए अपशब्दों का प्रयोग किया जाता है। औरत ही औरत का दुख दर्द समझ सकती है लेकिन इस कथन के विपरीत एक औरत ही औरत की शोषक है। पति-पत्नी के आपसी मनमुटाव को हिंसा में बदलने वाली औरत ही है। इसी चुगली, घरेलु राजनीति और ईर्ष्या-द्वेष, घृणा के कारण घरेलू हिंसा का शिकार गृहिणी होती है। सारा दिन कामकाज में इतना व्यस्त रहती है फिर भी काम न करने के ताने मिलते हैं। ऐसी विषम परिस्थितियों को नारी ने लोकगीतों में विरोध और आक्रोश के साथ बयान किया है-

"काऊ दिन देख लाऊँगी सासू

तैनें बहुत सतायौ मोय।

हाँ तैनें बहुत खिजायौ मोय ,

तैनें बहुत रुवायौ मोय। काऊ.....

दिन-दिन भर मोसौं चाकी चलवाई

खावन दियौ नांहि कौर। काऊ.....

लै रसरी मोहि कुइयाँ भेजौ

संग कपड़न की पोट।

धोवत-धोवत सांस उखर गई

मैं है गई बेहोस। काऊ दिन.....

बारी उमर मोहे ब्याह कें लाई

गज भर घूँघट और।

तपती धूप ढोरन संग भेजी

खुद सोई ज्वारयां ओट। काऊ दिन....

बात-बात मोहे गुलचा मारै.

ऊपर से धक्का धोर

अब तौ तेरी एक सुनूँ ना

बहुत सता चुकी मोय। काऊ दिन....."[13]

ससुराल की पारिवारिक जिम्मेदारियों को नारी संघर्षशील बनकर निभाती है। प्रस्तुत गीत में सास द्वारा दिये गये कष्टों का उल्लेख किया गया है। चक्की पीसना, कपड़े धोना, खेत खलिहान के कार्य, गाय, भैंस के साथ दोपहरी में भोजन भेजना आदि घरेलु कार्यों के साथ मानसिक एवं शारीरिक यातनाओं का वर्णन इस गीत में हुआ है। पीड़ित नारी अत्याचारों से भलीभाँति परिचित है, इसीलिए वह अपनी वेदना को चेतना के स्वर से व्यकत करती है और कहती है कि सास तुने बहुत रुलाया सताया लेकिन अब यह अन्याय नहीं सहुंगी और एक दिन तुझे देख लूँगी।

पति एवं सास-ननंद द्वारा बहू को प्रताड़ित किया जाना आम बात बन गई है। घरेलु कामकाज की व्यस्तता से वह अपना आप भुल जाती है, नारी का अस्तित्व घर की चार दीवारों में सिमटकर रह गया है। नारी अपने अधिकारों के प्रति जागरुक है सजग है और अन्याय के विरुद्ध डट कर खड़ी है । इन गीतों के माध्यम से अपनी सहज भावाभिव्यक्ति को प्रकट करती है।

शिक्षण संबंधित गीतों में नारी चेतना के साथ सामजिक संदेश की गूंज ब्रज लोकगीतों में सुनाई देती है। कुछ उदाहरण निन्मानुसार है,

“प्यारी है रहयौ भारी हेला, लग रहयौ साक्षरता कौ मेला अपने काम कूँ।

मैं तौ करुंगी पढाई, अपने नाम कूँ।।

दुनियाँ दै रही है जैकारौ,

पढ़िवे आय गयौ हरवारौ।

मैंने सिगरौ काम संवारौ।

मोते कहन लगौ घरवारौ, चोखे काम कूं।

मत जइयौ तू सकारे, अपने गांव कूँ ।।

मैं तौ करुंगी पढ़ाई, अपने नाम कूँ ।।

पोथी पढ़-पढ़ बने पटवारी,

उनकी इतरावैं घरवारी

पढ़िकै इज्जत होय हमारी,

पीछे क्यों राखिंगी नारी, अपने पांव कूँ ।।

मैं तौ करुंगी पढ़ाई, अपने नाम कूँ ।।

औडर आय गयौ सरकरी ।

अनपढ़ नाँय रहिंगे नर-नारी ।

जड़ता की जंजीरे कट रही,

पोथी चौपारन पै बँट रहीं, सिगरे गांव कूँ।

जब जनता कौ हियरा जागै ।

डंकल पूंछ दबायकैं भागै

सिगरे मिट जाँएगे घोटाले ।

नेतन के होंगे मुंह काले, पद के नाम कूँ ।”[14]

प्रस्तुत गीत में शिक्षण की अनिवार्यता का उल्लेख किया गया है। नारी समाज में अपने स्थान से भलिभांति परिचित है इसीलिए वह अपने अधिकारों और शिक्षण के हक के लिए जागृत हो गयी है। अपनी परिस्थितियों को बदलने हेतु तरक्की के आसमान में पतंग बन उड़ना चाहती है शिक्षण की डोर से वह अपने जीवन को सफल बनाना चाहती है। इस गीत में महिलाओं ने सामजिक एवं तात्कालीन परिस्थितियों के मद्देनज़र इस लोकगीत का ताना- बाना बुना गया है। पुस्तक पढ़ कर वह पटवारी बने पुरुष की नारी इतराती है अब वह पीछे नहीं रहेगी जड़ता की जंजीरें काट अब वह पढ़ना चाहती है। साक्षरता से अंधकार मिटेगा और न्याय होगा। शिक्षा की अनिवार्यता को नज़र अंदाज करने से देश में राजनीति का हाल ऐसा है। इस गीत में नारी की चेतना ही है जो नेताओं द्वारा किये जानेवाले घोटालों को प्रकाशित करना चाहती है तथा पढ़ लिखकर वह उस पद को प्राप्त कर जनता का उद्धार करना चाहती है।

“नारी मेरी पढ़ये ते तू काहे रही घबराय।

अनपढ़ जन कौ नाँय जमानौ, रयौ तोय बतराय।

मानव कौ कल्पान जगत में, ज्ञान बिना है नाँय॥ नारि मेरी.......।

बिना पढ़ै की बड़ी मुसीबत, दुविधा में पर जाय।

जैसैं आँधौ मूसौ घर में, भरभेरी सी खाय॥ नारि मेरी.......।

परै जरुरत जब रुपियन की, झट उधार लै आय।

होंय ब्याज के आठ परंतु, तू अस्सी दै आय॥ नारि मेरी.......।

ह से हिंदू , म से मुसलमान, ए से एक बनाय।

ग से गंगा, ज से जमुना मैया, हियरा में लहराय॥ नारि मेरी.......।

प से परिवार नियोजन बोलै, भ से भारत माय।

स से साक्षरता अपनाबैं, जनम सफल है जाय॥ नारि मेरी.......।“[15]

इस गीत में नारी ने शिक्षा को जीवन का आधार माना गया है। आधुनिक युग में शिक्षा एक दायित्व है समाज को नई उन्नति एवं नवीन प्रगति देने का श्रेय शिक्षा को है। आज के निरक्षर व्यक्ति समाज में जीवन निर्वाह कठिनाई से करते हैं। रोजमर्रा की विभिन्न क्रियायों में शिक्षा की अनिवार्यता को नज़रांदाज नहीं किया जा सकता है। शिक्षित व्यक्ति समाज में अपना गुजारा कर सकता है किंतु अशिक्षित व्यक्ति को अनेक मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। आज के समय में ग्रामीण लोकमानव शिक्षण को महत्त्व देता है तथा इसकी अनिवार्यता से आज कोई भी परिवार वंचित नहीं रहा है। उपर्युक्त लोकगीत में वर्णमाला के कुछ वर्णों का प्रयोग कर गीत को प्रभावशाली बनाया गया है। साक्षरता से ही नारी अपने जीवन को सफल बना सकती है तथा रोजगार प्राप्त कर आर्थिक रुप से स्थायी बना सकती है।

"काका मेरी बात मानों, थोर-थोरौ तौ पढ़ौ।

तिखन लौं पहुँचौगे, सीढ़ी पहिली तौ चढ़ौ॥

सबते साँचौ विद्या कौ धन, सकल कलेसन काटै।

चोर न जाकूँ चोर सकै. कोई भाई बंधु न बाँटै॥

चेंटी चलै पहाड़ै नाखैं करतब की बलिहारी

देहरी कूँ नाँखौ घरते बाहिरे कढ़ौ।

काका बात मेरी मानों........

विद्या ही सबकौ अमोल धन, नर होवै चाहि नारी।

बिना पढ़े कोऊ बात न पूछै, रोज-रोज की ख्वारी॥"[16]

लोकगीत नारी के जीवन कि वह अभिवव्यक्ति हैं जिसके एक-एक शब्द में महिलाएं अपने सुख-दु:ख, दांपत्य जीवन के विषाक्त संबंध को वर्णों की अमुल्य माला में गूँथ कर गाती है। नारी हमेशा से अपने साथ होते अत्याचारों, शोषण, आदि के प्रति जागरुक रही है, जिसका आक्रोश चेतना रूपी स्वर में लोकगीतों में प्रस्तुत हुआ है।

इतिहास में नारी को कभी सम्मान प्राप्त नहीं हुआ। "इतिहास एवं पुराणों में स्त्री का स्थान नगण्य है। हर कहीं उसे पुरुष की अनुगामिनी का स्थान मिलता है। पितृसत्ता का स्वरुप इतना जबरदस्त था कि स्त्री, मात्र पुरुष की छाया रह गई थी। सेमेटिक धर्म में पुरुष की हड्डी से स्त्री के निर्मित होने का वर्णन है। परवर्ती दौर में अरस्तु जैसों विद्वानों ने बताया कि स्त्रियाँ कुछ बातों में पुरुषों से पीछे हैं। उनमें गुणवत्ता नहीं है।"[17] ऋषिमुनी हो या विद्वान सभी ने नारी को घृणा की दृष्टि से देखा किसी ने मार्ग से भटकाने वाली कहकर सम्बोधित किया तो किसी ने अपमानित शब्दों का प्रयोग आज भी गाली-गलोज के माध्यम से स्त्री की अस्मिता को खंडित करता रहा है।

ब्रज लोकगीतों में सांस्कृतिक एवं विभिन्न अवसरों गाये जानेवाले गीतों में अन्याय के खिलाफ आवाज उठाती महिलाओं ने सत्य को उदघाटित किया तथा परिस्थितियों को यथावत यर्थाथ चित्रण किया है. पिता और पुत्र-पुत्री के संदर्भ में, पुत्र जन्म एवं पुत्री जन्म के अवसर पर गाये जानेवाले सोहर गीत, माँ-बेटी के करुणात्मक गीत, भाई-बहन के गीत, पति-पत्नी (प्रेम,विरह,वियोग) के गीत, ननंद-भाभी, सास-बहू, देवर-भाभी, आदि ससुराल पक्ष के गीत आदि गीतों में नारी ने अपनी वेदना को चेतना रुपी स्वर के साथ प्रकट किया है।

▪ ब्रज लोकगीतों में नारी अस्मिता का बोध :-

पुरुषप्रधान समाज ने पुरुषों को सिंघासन पर राज करने और नारी को चरणों में जीवन व्यतीत करने को जीवनोद्धार बताया। "पितृसत्ता पुरुषकेंद्रित व्यवस्था है जिसमें स्त्री दुसरे दर्जे में उपेक्षित रहती है। स्त्री का दोहरा दर्जा सामाजिक उन्नयन का विरोधी तत्त्व बन जाता है। प्रतिरोधी अभियान के रूप में रेडिकल नारीवाद लिंग के साथ वर्ग, वर्ण, सौंदर्य, यौनता, क्षमता आदि बिंदुओं पर भी व्यापक चर्चा करता है। पितृसत्तात्मकता के राजनीतिक प्रतिकार के रूप में इन्होंने स्वस्थ एवं साझेदारी में व्यस्त समलिंगीय सम्बंधों को सामने रखा।"[18] नारी अस्मिता को समाहित करनी का श्रेय आंदोलनकारी सामाजिक कार्यकर्ताओं ने किया उन्होंने बलात्कार, यौन शोषण, घरेलू हिंसा, आदि का विरोध कर नारी के अधिकारों और उसकी अस्मिता को सहजने का प्रयास किया।

"जाति-धर्म तथा लिंग-वर्ग के परे संवैधानिक समता के अधिकार होने पर भी पितृसत्तात्मक समाज में रहने वाली भारतीय स्त्रियों को सुरक्षा प्राप्त नहीं होती है। बेमतलब एवं अवैज्ञानिक नैतिक मापदंडों को उछालकर आज भी खाप पंचायतें प्रेम-विवाह रोकती हैं। रोजगार, राजनीतिक या धार्मिक कार्यों में वर्जनाएं आज भी स्त्रियों पर थोपी जाती हैं। 'मोरल पोलीसिंग' की अनहोनी महानगरीय घटनाएँ सूचित हैं। अंध-पुत्रमोह, कन्या भ्रुणहत्या, स्त्री जन्म-दर में गिरावट, बालिका-विवाह, बालिका ट्राफिकिंग, अवयस्क मातृत्व, गर्भपात की समस्याएं, विवाह में निर्णय न लेने की स्थितियाँ, कामकाजी स्त्रियों पर भेदभावपूर्ण रवैया, यौन-शोषण आदि अनेक समस्याएँ हैं जो विविध उम्र में स्त्रियाँ झेलती हैं। स्वास्थ्य रक्षा, परिवार नियोजन, एड्स निवारण आदि में स्त्रियों को उपकरण के रूप में इस्तमाल किया जाता है। राष्ट्रीय स्तर पर स्त्री-हनन के आँकड़े बढ़ जाती है। तारतम्यमूलक दृष्टि में आज भी भारतीय कामकाजी क्षेत्र में स्त्रियों की समान भागीदारी नहीं है। इसलिए आरक्षण की माँग की जाती है। राजनीति, प्रशासन, सुरक्षा, आदि के क्षेत्रों में स्त्री-प्रतिनिधित्व को बढ़ाना है।"[19] नारी की अस्मिता को केंद्र में रखकर भारत में सुधार कार्य भी हुए है।

भारतीय समाज में कुछ कुरीतियाँ हैं जिनके कारण ही समाज ने नारी को बोझ की संज्ञा दी है। इन में एक है दहेज प्रथा। भारतीय परिवारों में दहेज एवं विवाह की चिंताएं पुत्री जन्म के साथ ही अंकुरित हो जाती है। पुत्र जन्म पर मिठाई का वितरण और ढोल ताशो की गूँज से सभी को ज्ञात हो जाता है कि कुलदीपक का जन्म हुआ है। वहीं पुत्री के जन्म पर उदासी का माहौल छा जाता है। ऐसी मान्यताएं आज भी समाज में हैं कि बिना पुत्र की माता का जीवन व्यर्थ है, गर्भ की सारथकता का प्रमाण पुत्र जन्म के बाद ही संभव है, ब्रज में इस संदर्भ में निम्नलिखित गीत की एक पंक्ति उपलब्ध है-

"बाग मैं पपइया बोलै, बिना पुत्तर की मइया रोबै।"

जिस नारी ने पुत्र को जन्म नहीं दिया उसके भाग समझो फुट ही गये ब्रज में ऐसी नारी के लिए एक युक्ति प्रचलित है-

"मेरे फूटे भाग पूत मेरी गोद न आयौ।"

भारतीय समाज में पुत्र प्राप्ती सौभाग्य है जिसका सबसे बड़ा कारण हमारे संस्कार है। वंश को बढ़ाने वाले बेटे का परिवार में अलग ही महत्त्व होता है जिसके बिना अंतिम संस्कार की विधि सम्पन्न नहीं हो सकती ऐसे पुंशवाहक प्राप्त कर महिलाएं खुद को सौभाग्यवती समझती हैं । ब्रज की एक कहावत है "खोटौ पैसा अरु खोटौ पूत समै पै काम आवै है" ब्रज में कहा जाता है कि खोटा सिक्का और खोटा पुत्र समय पर काम आता है। बेटे के जन्म पर परिवार में उत्सव का माहौल होता है वहीं बेटी के जन्म पर परिवार में उदासी का माहौल होता है। बेटी के जन्म से ही पिता की चिंताएं आरंभ हो जाती है। जन्म से ही बेटी को पराया धन कहकर पुकारा जाता है ये तो पराए घर की लक्ष्मी है आदि शब्दों की संज्ञा से नारी का अस्तित्त्व अलंकृत किया गया है। विवाह होने तक कन्या के परिवार को अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ता है। समाज में दहेजप्रथा एक ऐसी विचारधारा है जो संक्रमण की तरह फैल चुकी है जिससे कोई भी मनुष्य अछूता नहीं है। शिक्षित नौकरीवाला वर खोजने के बाद पिता अपनी सम्पत्ति गिरवी

रखता है या बेच देता है ताकि उसकी बेटी सुखी व समृद्ध परिवार में जीवन व्यतीत करे। दहेज प्रथा के कारण बेटी के पिता को सर झुकाना पड़ता है उनकी विवशता का हम आंकलन भी नहीं कर सकते हैं। ऐसी करुणावस्था को इस गीत की कुछ पंक्तियों से प्रस्तुत किया है –

"मैया नैं दीने अन-धन कंगना, बाबुल नैं दिनौं दहेज।

मैया के रोये नदी बहति, बाबुल रोए सागर-ताल।"[20]

ब्रज के विभिन्न गीतों में नारी की अस्मिता का बोध वृतांत वर्णन प्राप्त हुआ है। पति-पत्नी संबंधी गीतों में महिलाएं पुरुषों पर व्यंग्य करती नज़र आती हैं। इस क्रम में कुछ गीत निम्नानुसार हैं –

मसखरी करते हुए ब्रज की नारी अपने पति को दूजा विवाह और जीवन में उसके आनेवाली बाधाओं से अवगत कराती है। साथ ही चेतना रूपी स्वर से अपनी अस्मिता के लिए आवाज उठाती है।

प्रस्तुत गीत की पंक्तियों से महिलाएं अपने पति को बदलने की धमकी देते हुए कहती है-

"बदलुंगी बलमा तोय काऊ दिन जुल्फंवाले छैला से"

अर्थात् पत्नी पति से कहती है के वह उसे बदल देगी जुल्फवाले (अच्छे सुंदर केश) वाले प्रेमी से ब्रज लोकगीत में ताने की धुन पर पति को तरसाते हुए एक गीत प्रस्तुत है-

"जुबना एँ छुअन नाएं दऊँगी

बलमा तोय मारूँगी तरसाय कैं।

लहँगा पहरि ओढ़नी ओढ़

सलूजा पहिरौ बनाय कैं।

सलूजा भीतर चोली पहिरी

ढोला ते छिपाय कैं॥ बलमा........"[21]

जीवन में उतार-चढ़ाव हर संबंध में आते हैं। पति-पत्नी के संबंध में अक्सर कोमल, मधुर समय के साथ अनचाहा कठिन समय भी आता है। कुछ संबंध विपरीत परिस्थितियों के कारण टूट भी जाते हैं। लेकिन कुछ पुरुष महिलाओं को दुसरा विवाह या तलाक की धमकी देकर आजीवन डरा के रखते हैं। ऐसे ही कुछ प्रसंगों का उल्लेख निम्नांकित गीतों में किया गया है।

पति की अस्मिता को खंडित करती नारी कहती है -

"करि लीजो दूसरौ ब्याह लांगुरिया,

मेरे भरोसे इकलौ मत रहियो।

पीस न आवै मोपै पीसनो अरु डार न आवै मोपै कौर।

राँध न आवै मोपै राँधनौ अरु परस न आवै मोपै थार।"[22]

पति का अन्य नारी से नाजायज रिश्ते पर नारी का आक्रोश व्यक्त करता गीत निम्नांकित है –

"ऊपर है खस-खस का बंग्ला

तलै लगा बाजार जी

पाँचों खाने गिन गिन रखै

भूल गई आचार जी।

न जानूं किसनै ने खाया न जानूं बजार जी

ऊपर है खसखस क बंग्ला...

पाँचों लोटे गिन गिन रखै

भूल गई गिलास जी

ऊपर है खसखस क बंग्ला...

खोलौ-खोलौ विजन किवारिया हम बड़ै बिमार जी

बालि बच्चै बाहर डारौ

भीतर डारौ खाट जी...।

झुपर मढ़ैया में डारौ तेरी टुटी खाट जी

चना-मटरा की रोटी बनावौ

रांदौ मटर की दाल जी

खानै को जो मिले खाय लै

नाय तो जा बाके पास बजार जी”

(फिरदौस साबिर खान)

आभुषण प्रियता को दर्शाता लोकगीत प्रस्तुत है-

“भूसा बिकाय मोकूँ लाय देउ लटकन।

गैया बिकाऔ चाहै, भैंसन बिकाऔ।

बैलन बिकाय मोकूँ लाय देउ लटकन।”[23]

पति-पत्नी के बीच शाश्वत संबंध होता है जो एक उम्र के तीन चरण में समाया है। नवविवाहित से माता-पिता बनने तक के जीवन के अध्याय में अनेकों कठिन परिस्थितियों से जुझकर जब ये रिश्ता बुढ़ापे की दहलीज तक पहुँचता है तब सोने की तरह पवित्र और अचल व समृद्ध बन जाता है। एक दूजे के बिना रह नहीं सकते है ऐसी परिस्थिति बन जाती है। उमर के इस पड़ाव पर पति-पत्नी विविध अनुभूतियों को संझोये आगे बढ़ते हैं। ब्रज में ऐसे गीत प्राप्त होते हैं के जिनमें पति बुढ़ापे में अपनी पत्नी की कदर करता है और पत्नी की मृत्यु के बाद अफसोस करता है। जिस पर महिलाएं व्यंग्य करते हुए पति पर ताने कसते हुए गाती है-

“रंडूआ तौ रोबै आधी रात , चूल्है में जाके राख परी।

फुटी री रे तकदीर रँडुआ तोकूं नांय लुगाई रे।

पुरुषप्रधान समाज ने नारी अस्तित्त्व और उसके सम्मान की सदियों से अवहेलना करता आ रहा है डॉ. सत्येंद्र ने ब्रज लोकसाहित्य का अध्ययन पुस्तक में पति-पत्नी के संबंधों का गीत प्रस्तुत किया है-

“पुरुष और स्त्री में लड़ाई हो गई। स्त्री अपने पीहर चली गयी। वहाँ सास ने जामाता से कारण पूछा तो उसके फूहर आचरण का अतिशयोक्ति को उल्लंघन करनेवाले अद्भुत वृत्त के द्वारा वर्णन किया, और तब कहा अपनी बेटी को अपने घर ही रखिए, हमसे नहीं संभलती है - गीत इस प्रकार है-

"खसम जोड़ भई लड़ाई, पीहर कूँ उठि चाली री भैना

हात बोइया, बगल में चरखा, पीहर में जे पहुँची री भैना

अँगना बिठंती माइलि पाई, कैसे धीअरी आई?

तेरे जमैया ने मारे, माइके चले आई री भैना

सोमत ते लाला जागे, ससुरारि मे भाजे दौरे री भैना

सासुलि बोलै बोलने, धीअरी कैसे मारी रे लाला

आऔ री मेरी सारी सरहज, सुनियो कान लगाइ

चूल्हे बैठी बार खसौटे, नौ मन राख उड़ावै

कच्ची पक्की दार पकावै, नौ मन के फुलका डारै

नौ मन की तौ रोटी खाइ गई, बटुला भरि के दारि

तीन घड़ा पानी के पी गई, पोखरि है गई खाली

चड़ि कोठि पै मुनन बैठी, घरु बहिगौ पटवारी कौ

पुल टुटियौ रैवाड़ी कौ ॥"[24]

नारी के मान स्वाभिमान का संघर्ष अनंत है सदियों से अपने ही रिश्तों से अधिकारों और अस्तित्त्व के लिए जुझ रही है। पारिवारिक विघटन की समस्याएं आम हैं परिवार की महिलाएं ही घर में आपसी रिश्तों में कलेश कराती हैं। नारी की अस्मिता को खंडित करने में खुद औरत ने औरत की अवहेलना की है।

ब्रज में प्रसव पीड़ा के कुछ लोकगीतों का विवरण हम गत पृष्ठों पर कर चुके हैं। स्त्री जब बालक को जन्म देती है तब वह अपने परिवार के प्रत्येक सदस्य से सेवा, सहानुभूति, स्नेह चाहती है। नौ मास गर्भ धारण करने के बाद जब वह शारीरिक और मानसिक रूप से दुर्बल हो जाती है उस समय वह अपने परिवार विशेष रूप से अपने पति का साथ चाहती है। किंतु इस समय में उसके साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया जाता जिसे वह आजीवन भूल नहीं पाती। ब्रज में सोबर, जच्चा गीत आदि का उल्लेख मिलता है इन गीतों को देहात में 'जचकीरी' भी कहा जाता है।

भारतीय परंपरा के अनुसार बालक को जन्म देने के बाद स्त्री को चालीस दिन तक एक कमरे में रहना होता है उसके बिस्तर, बर्तन सब अलग कर दिए जाते है ग्रामीण महिलाएं आज भी इस नियम का पालन करती हैं और परिवार से अलग-थलग पड़ी रहती है। इन महिलओं के अनुसार सोबर के दिनों में महिला अपवित्र है क्योंकि प्रकृति के अनुसार स्त्री की शारीरिक संरचना ऐसी है के जब वह नौ मास गर्भधारण करती है तब मासिक धर्म रुक जाता है। बालक के जन्म होते ही मासिक धर्म लगभग बीस से पैंतीस दिन तक रहता है। इस समय में महिलाओं को सेवा और खान-पान के साथ सहायता सहयोग की आवश्यकता होती है। किंतु जो बहू सारे परिवार का सुर्योदय से लेकर सुर्यास्त तक हर परिस्थिति में सेवा करती है जब वह अन्योन्याश्रित है तब उसे कोई झूठा सहारा नहीं देता। निम्नांकित गीत कि पंक्तियों में नारी की अवहेलना का चित्रण है जिसमें सास-ननंद गाली देकर गीत गा रही हैं के लेटे सब खा जाती है न सास को पूंछे न ननंद को पूंछे पड़ी-पड़ी इतराए मुस्कुराए।

"सब लपु-लपु खाई, छिनारिया की।

सासु कूं न पूछै ननद कूं न पूछै।

परी-परी इतराइ, परी-परी मुसकाइ, छिनारिया की।"[25]

पुत्र जन्मावसर पर ननंद नेग माँगती है, बहू को पहले से पता होता है कि उसकी ननंद ने अपनी ननंद को नेग में क्या दिया है! इसलिए वह अपने पति को कहती है कि नेग के चक्कर में संपत्ति धन दौलत सब मत लुटा देना।

"घर में अकैली सैंया घरु न लुटाई दीजौ।

सासु जो आवै सैंया द्वारे ते लौटाइ दीजौ।

सासु कौ नेगु मेरी मैया पै कराइ लीजौ।

ननदी जो आवें सैंया उनहू कूं लौटाइ दीजौ।

ननदी कौ नेगु मेरी भैना पै कराइ लीजौ।"[26]

ब्रज लोकगीतों में विभिन्न विषय पर गीत प्राप्त होते हैं। प्रस्तुत गीत पर्दा प्रथा से संबंधित है इस गीत में परिवर्तन और आधुनिक युग में सर पे पल्ला और नकाब पहने की बात कही गयी है। आज कल फैशन के दौर में महिलाएं प्राचीन पहरवेश को इतना सम्मान नहीं देती कालजयी प्रवृत्तियों का आंकलन करने पर ज्ञात होता है कि आज का समाज रूढ़िवादी संस्कृति को पीछे छोड़ आगे बढ़ रहा है। मुख्यत: महिलाएं अपने इच्छा अनुसार पर्दा प्रथा को अपनाती हैं। कहीं न कहीं कुछ समुदाय आज भी पर्दा प्रथा को सक्रिय रूप से अपनाये हुए हैं।

"बहू तोहि लग्यौ है जमाने कौ रंग

देखिं तोहि जियरा जरि-जरि जाय।

उल्टौ पल्लौ तैंनैं लै लीयौ

औरु घूंघट दियौ छिटकाइ।

नैकहु ना सकुचावै सबसौं

हंसि-हंसि कें बतराय

बिजली घर में तैंनैं लै लई

नलहू लियौ लगवाई ॥ बहू.....॥"[27]

उपर्युक्त गीत नारी अस्मिता का बोध काराता है। कहावत है कि हाथ की पाँच ऊंगली बराबर नहीं होती ठीक उसी प्रकार समाज में हर घर-परिवार में एक सा वातावरण नहीं होता। जहाँ हम अबतक पति द्वारा पत्नी का शोषण, सास-ननंद द्वारा बहू का शोषण आदि का वर्णन कर आएं हैं। वहीं कुछ घरों में आनेवाली बहू घरवालों की त्रासदी बनकर आती है। दिनरात उनको थाने, कोर्ट-कचहरी ले जाने की धमकी देती है। प्रस्तुत गीत ऐसी ही परिस्थितियों का विवरण है-

"अट्टै पै से कूद परी रे तुम दैखो जाका दीदा।

मैं तौ ऐसी खलकख्वार मोकूँ कर देयौ गधै पै सवार।

तुम देखौ मेरा दीदा।

अट्टै पै से कूद परी रे तुम दैखो जाका दीदा

मैं चार-छै सै लड़ि आयी मैं तौ घर कौ भजि आय री

अट्टै पै से कूद परी रे तुम दैखो जाका दीदा

मैंने सासऊ खूब धकियाई रे

तुम दैखो जाका दीदा

अट्टै पै से कूद परी रे तुम दैखो जाका दीदा

जब लिया हाथ मै डंडा फिर करा मरद को वंडा।

जा घर-घर मांगै कंडा रे

तुम दैखो जाका दीदा

अट्टै पै से कूद परी रे तुम दैखो जाका दीदा

जा मरद कौ आया गुस्सा आया वो अपना जाल बिछाबै....॥

फिर दैख कै सुरत मरद बहौत घबराए

जा करती है मनमानी रे

तुम दैखो जाका दीदा

अट्टै पै से कूद परी रे तुम दैखो जाका दीदा.....॥"

लोकगायक (मैसर खान)

अक्सर समाज में महिलाओं को उनकी काबिलियत के आधार पर कम ही आंका जाता है। लोकगीत में नारी-विर्मश कण-कण में व्याप्त है। किंतु शिष्ट साहित्य की भांति लोकगीतों में प्राप्त नारी- विमर्श इतना परिनिष्ठित नहीं हो सका जिसमें विद्वानों की असफलता रही है। लोकगीतों में नारी के योगदान और नारी की अस्मिता को महत्त्व देते हुए रामनरेश त्रिपाठी का कथन है कि- "जब गृहदेवियाँ एकत्र होकर पूरे उन्माद के साथ गीत गाती हैं, तब उन्हें सुनकर चराचर के प्राण तरंगित हो उठते हैं। आकाश चकित सा जान पड़ता है, प्रकृति कान लगाकर सुनती हुई सी दिखाई पड़ती है।"[28]

ब्रज लोकगीतों में सिल्ला बीनने, रोपनी, कटाई आदि गीत श्रम का भार कम और आनंद करने के लिए गीत गाये जाते हैं इन श्रमगीतों में महिलाएं पुरुषों के बराबर श्रम दान करती हैं। इस समय महिलाएं मौज मस्ती में गीत गाते-गाते अपनी अस्मिता को खंडित करने वाले पुरुषों पर व्यंग्य करती हैं।

"कोरी कलसिया शीतल पानी

रोटी देवे चाली रे

रोटी उतार मेड़ पर रख लई

गाजर खोदन लागी रे

खोदखाद सिर पर रख लई

पीछै पड़ौ भिखारी रे।

एक टूक मैंने वाको फैंको।

आय गय बलम हजारी रे

एक धाप मेरे मुख पै मारी

टूटि परी नथ वारी रे।

आठ दिनो मैंने अन्न न खायौ

दस दिन सोय गई न्यारी रे

कौठे ढूंढ कुठरिया ढूंढी जा पकड़ौ महतारी रे।

ऊँची अटारी झझन किवारी

जामेन सोय तेरी घरवारी रे।"[29]

ऋतुपरक गीतों में वर्षा ऋतु, ग्रीष्म ऋतु, शीतऋतु में ग्रामीण मानव अनेकों कठिनाइयों से जुझता है। महिलाएं अभिव्यक्ति के कोई अवसर रिक्त नहीं जाने देती हैं। किसी न किसी बहाने से वे अपनी आपबीति को गीतों के द्वारा जोश में गाती हैं साथ ही अन्य महिलाएं आरोह -अवरोह में मलंग होकर गाती हैं।

"भरौ कटोरा दुध्ह कौ,

पिया बिना पियौ न जाय।

मैया बाप की लड़ैतिन जी,

कोई पिया बिन रहयौ न जाय।

ओटा पै जी कोई ओटारी जी

कोई सोना घड़ै सुनार

ऐसौ बिछछौआ गाढ़ दे

जाकि धमक सुनै कोई यार.....॥"

लोकगायक (जफर)

सावन की बेला में ग्रामीण महिलाएं झुलों पर गीत गाती थी इन गीतों सुख-दुःख, हास्य-व्यंग्य, हास परिहास आदि भावनाओं का सम्मेलन होता था। प्रस्तुत गीत में पत्नी पीहर में है और अपने पिता से कहती है के पति के बिना उसका मन विचलित है कोई ऐसी ध्वनी उत्पन्न करो कि उसके पति तक उसका ये विलाप पहूँच सके। निम्नलिखित गीत में नारी अपने मायके के रिश्ते-नाते याद कर रुदन करती है और ससुराल पक्ष ने उसे किसी से मिलने की अनुमति नहीं दी है। यहाँ झुला-झुलते समय नारी गीत के सहारे ससुराल की महिलाओं को ताना देते हुए ललकारती है और आनंद मय होकर गीत गाती है।

“मेरी भरी पिटारी फुलौं की

मैं मालिन बन बन आइ री...

मेरे बाबा बैठे बाग मै

मै उन सै मिल मिल आई री....

मेरी भरी पिटारी...

मेरे चाचा बैठे बाग मै

मै उन सै मिल मिल आई री....

मेरी भरी पिटारी...

मेरे भैया बैठे बाग मै

मै उन सै मिल मिल आई री....

मेरी भरी पिटारी...”

(फिरदौस साबिर खान)

शीत ऋतु में ब्रज में ठंड का प्रकोप असहाय होता है। ऐसे में देहात में कहते है के जब तुषार कटता है तब शारीरिक क्षमता ठंड झेलने कि हिम्मत तोड़ देती है फिर भी औरतें घर के खेत खलिहान के सभी आम करती हैं।

इस गीत में सास बहू ठंड में कामकाज को लेकर एक दूजे पर व्यंग्य करती है –

"अरि जा जाड़े को जौंहरते बहुअलि लैदीजो

खाट कुठरिया में

साल अब गई बीस की आय

जोरू जाड़े नें दियौ लगाय,

सौरि ढइया की लेउ भरवाय।

सो जाड़े में ठिठरंगे बालक तू दैलीजो खोर किवरिया में।

अरि जा जाड़े........

कै जाड़ौ परि रहौ बेसुमार

चौ तरफ मचि गयौ हाहाकार

मारि दये लहाये औरु अरहार

सौ खेतन में ते झारि पताई लइयों बाँधि गठरिया में।

अरि जा जाड़े........

भौत से खेत करे बिसमार

न बाकी छोड़ी एकऊ घार

परैगी कैसे जाने पार

सतौ जौर भेरावती मारौ है गयौ पार नगरिया में।

अरि जा जाड़े........॥"[30]

किसान ऋतु की मार से बच नहीं सकता है ग्रामीण जीवनयापन विभिन्न कष्टों से भरा है। बे मौसम बरसात, सूखा, तुषार गिरने से किसानों की फसल बर्बाद हो जाती है जिससे वह जीवन जीने के लिए प्राथमिक वस्तुएं तक मुहैया कराने में असफल हो जाते हैं। पूस की रात में खेत खलिहानों में अलाव जला कर हाथ ताप कर जानवरों से फसल की रखवाली करते हैं। इस गीत में बहू अपनी सास से कहती है के अरहर की लकड़ी की गठरिया इस ठिठुरती हुई ठंड में वह खेत से काट कर लाई है। तुम्हें ठंड में ठिठुरने की कोई जरुरत नहीं है अपने बच्चों को लेकर दरवाजे बंद कर रखो।

नारी अस्मिता को सम्बोधित करते लोकगीत –

"हो हो हो हो शरण शहनाई की,

बिनु बालम नाँय कदर लुगाई की।

सिर के ऊपर सिरका अरु उसके उपर साई का,

दो मिनटों में चाल को बदलै क्या विश्वास लुगाई का॥

हो हो......

छन कन-कन के तीन घूघरा मेल सौं मेल मिलाय दऊँगी।

जो मोते सासुल लड़ै लड़ाई टूकन कूँ तरसाय दऊँगी॥

हो हो......

छन कन-कन के तीन घूघरा मेल सौं मेल मिलाय दऊँगी।

जो मोते ससुरा लड़ै लड़ाई आंचन कूँ तरसाय दऊँगी॥

हो हो......

छन कन-कन के तीन घूघरा मेल सौं मेल मिलाय दऊँगी।

जो मोते जेठजी रहै प्यार सौ भूरी भैंस बंधाय दऊँगी ।।

हो हो......

छन कन-कन के तीन घूघरा मेल सौं मेल मिलाय दऊँगी।

जो मोते देवर रहै प्यार सौ छोटी भैन दिवाय दऊँगी ।।"[31]

इस गीत में नारी विद्रोही स्वर से सास और ससुर को धमकी देती है के अगर उसे सताया गया तो वह रोटी को तरसा देगी जो प्यार से रहोगे तो देवर के साथ अपनी छोटी बहन का विवाह भी करवा देगी।

गीतों के मर्म को समझना और आज के युग में उनकी प्रासंगिकता को सार्थक होते देखना आश्चर्य की बात है। महिलाएं समाज में सम्मान से रहे यही उनकी अपेक्षा है।

"मैंने मना करी बालम ते सड़क पै मत खेलौ सट्टा।

सासऊ बेची सुसरऊ बैचौ बनवाय लियौ अट्टा।

चढ़ा अट्टा पै पितंग उड़ावै उल्लू कौ पट्ठा।

मैंने मना करी बालम ते......

जेठऊ बैचौ जिठानिऊ बैची बनवाय लियौ अट्टा।

चढ़ा अट्टा पै पितंग उड़ावै उल्लू कौ पट्ठा।

मैंने मना करी बालम ते.....

देवरऊ बैचौ दौरानिऊ बैची बनवाय लियौ अट्टा ।

चढ़ा अट्टा पै भाभीयै छेड़ि फोरि रह्यौ ठट्टा ॥"[32]

नारी अपने पति को जुआ और सट्टे बाजी के लिए चेतावनी देती है किंतु वह उसकी एक नहीं ससुराल के सभी सदस्यों को सट्टे में हार के अट्टा यानी उंची इमारत बनाकार हँसता है।

लोकगीतों में नारी की वेदना, पीड़ा, दुख-दर्द, यातनाएं, शोषण सभी का उल्लेख मिलता है। श्याम परमार ने लोकगीतों में भाव एवं लोकमानव की नैसर्गिकता का चित्रण करते हुए कहा है कि- "गीतों के प्रारम्भ के प्रति सम्भावना हमारे पास है, पर उसके अंत की कोई कल्पना नहीं । यह वह बड़ी धारा है, जिसमें अनेक छोटी-मोटी धाराओं ने मिलकर उसे सागर की तरह गम्भीर बना दिया है। सदियों के घात-प्रतिघातों ने उसमें आश्रय पाया है। मन की विभिन्न स्थितियों ने उसमें अपने मन के ताने-बाने बुने हैं। स्त्री-पुरुष ने थककर इसके माधुर्य में अपनी थकान मिटाई है। इसकी ध्वनि में बालक सोये हैं जवानों में प्रेम की मस्ती आई है, बुढ़ों ने मन बहलाए हैं, वैरागियों ने उपदेशों का पान कराया है। विरही युवकों ने मन की कसक मिटाई है, विधवाओं ने अपने एकांगी जीवन में रस पाया है, पथिकों ने थकावटें दूर की हैं, किसानों ने अपने बड़े-बड़े खेत जोते हैं। मजदूरों ने विशाल भवनों पर पत्थर चढ़ाए हैं और मौजियों ने चुटकुले छोड़े हैं।"[33] विद्वानों ने लोकसाहित्य को स्त्री की देन माना है। ब्रज लोकगीतों में विषय बहुलता के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार के गीत प्राप्त हुए हैं। डॉ. सत्येंद्र ने विषय बहुलता का प्रमाण देते हुए लिखा है कि- "स्त्रियों के गीत में उनके लोक की ही सामग्री रहती है, अधिकांशत: इन गीतों में नाते-रिश्तों का उल्लेख, नेगाचर, आभूषणों तथा भोजनों का वर्णन, टोटकों का अनुष्ठान, छोटी- छोटी प्रेमकथायें, परिपाटी से प्राप्त स्मृति का समावेश रहता है। इनमें कम से

कम परिवर्तन होता है, पुनरावृत्तियाँ भी रहती हैं। जो नये गीत स्त्रियों में गाये जाते हैं वे या तो भक्ति-प्रधान होते हैं या किसी भी सामयिक विषय पर हो सकते हैं।"[34] ब्रज संस्कृति एवं परिवेश को देखते हुए ब्रज लोकगीतों में नारी की प्रत्येक समस्या का चित्रण प्राप्त होता है।

▪ निष्कर्ष

नारी जीवन का संघर्ष भारतीय समाज में कई सदियों से चला आ रहा है। समाज में नारी के अधिकारों की लड़ाई चुनौतीपूर्ण रही है लेकिन समय के साथ सामाजिक परिवर्तनों के परिणामस्वरूप कई भी सुधार हुए हैं। जिससे महिलाएं अपने आत्मसम्मान और जीवनयापान को सरल बनाने के प्रयास में सफल हुई हैं। शिक्षण, सामाजिक रुढ़िवाद, जातिवाद, लिंगवाद, रोजगार और दहेजप्रथा, बाल विवाह, प्रेम विवाह आदि सामाजिक अभिविन्यासों के खिलाफ महिलाएं आवाज उठा रही हैं। समाज में महिलाओं के हक के लिए और भी अधिक जागरूकता लाने का प्रयास जारी है।

लोकसाहित्य का अस्तित्व मानव सभ्यता के इतिहास में अहम भूमिका निभाता है। लोकसाहित्य यह विभिन्न भाषाओं, बोलियों और क्षेत्रों में प्राप्त होता है। लोकसाहित्य की समूचा अस्तित्व लोकमानव की भावनाओं, जीवनशैली, और सांस्कृतिक धाराओं का प्रतिनिधित्व करता है।

ब्रज लोकगीतों में भी नारी के जीवन की विविध समस्याओं का वर्णन मिलता है। जिसके अंतर्गत समाजिक समस्याएं, पारिवारिक समस्याएं, व्यक्तिगत समस्याएं, आर्थिक समस्याएं, आदि समस्याओं का निरुपण लोकगीतों में मिलता है। पौराणिक काल से ही नारी की स्थिति अति दयनीय रही है। भारतीय समाज में सदियों से अस्पृश्यता, भेदभाव, कुरीतियाँ, हैं जो समाज को दीमक की भांति खोखला करती आ रही हैं। कलुषित पितृसत्तात्मक विचार धारा के कारण नारी का जीवन समस्याओं से घिरा रहा है। बाल्यावस्था से वृद्धावस्था से लेकर महिलाएं विषम परिस्थितियों से लड़ती रहती है। नारी के संघर्ष की यात्रा आजीवन चलती रहती है। उसकी पीड़ा आकाश की भांति है जिसका कोई अंत नहीं जो असीम है। श्याम रंग होना, विवाह न होना, दिव्यांग होना आदि समस्याओं से नारी का अस्तित्व जूझता है।

लोकसाहित्य के अंतर्गत लोकगीत के माध्यम से नारी ने अत्याचारों, शोषण, अन्याय की गाथा स्वानुभूति के स्वर में गूंथ कर अपने कष्ट को व्यक्त किया है। सास-ससुर, ननंद, जेठ, आदि द्वारा नारी का शोषण किया जाता है नारी हर परिस्थिति में संघर्षशील बनकर परिवार की जिम्मेदारी निभाती है। लोकगीतों में प्रयुक्त भावनाए प्रेम-त्याग, वात्सल्य के रूप, सतीत्व, बलिदान, कुण्ठा, तनाव-भटकाव आदि को गा कर नारी मन कुछ पल के लिए यातना मुक्त हो जाता है। लोकगीत यह नारी के ह्रदय की व्यथा का महाकाव्य है।

बचपन से नारी को त्याग, बलिदान, संघर्ष के पाठ पढ़ाये जाते हैं। वह चाह कर भी खुलकर इस अन्याय के खिलाफ आवाज नहीं उठा सकती है। अतएव कहीं न कहीं उस चेतना को परिणाम नहीं मिल पाया था लेकिन आज भी कई महिलाएं नारी विमर्श पर कार्य कर रहीं है। यहाँ हम देख सकते है कि नारी चेतना है लेकिन शिष्ट साहित्य की तरह नारी विर्मश की भांति चर्चित नहीं हो सका।

हम अपनी सोच को बदलने का एक प्रयास करें तो यकीनन बदलाव हो सकता है। जिस दिन नारी और पुरुष के बीच की आधिकारिक भिन्नता मिटेगी। नारी को भी पुरूष के समान अधिकार और आदर मिलेगा, उस दिन समाज वास्तव में बदलेगा और महिलाएं सम्मान से अपना जीवन व्यतीत कर सकेंगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. प्रमिला के.पी.; स्त्री-अध्ययन की बुनियाद; पृ.15
2. वही; पृ.25
3. वही; पृ.25
4. डॉ. शेफाली चतुर्वेदी; ब्रज लोकसाहिय नव चिंतन; (मैनेजर पाण्डेय से हुई मुलाकात के आधार पर); पृ.180
5. डॉ. त्रिलोकीनाथ 'प्रेमी'; ब्रज लोकगीतन में पारिवारिक संदर्भ; ब्रज लोक वैभव; सं. मोहनलाल मधुकर; पृ. 85-86
6. उद्धृत- सं. मोहनलाल मधुकर; ब्रज लोक वैभव; डॉ. आशा कुलश्रेष्ठ; ब्रजनारी लोकगीतन कौ सांस्कृतिक अरु साहित्यिक महत्व; पृ.16
7. उद्धृत- सं. मोहनलाल मधुकर; ब्रज लोक वैभव; श्री मेवाराम कटारा; सामन के लोकगीतन में नारी की विरह-वेदना; पृ.99
8. उद्धृत- सं. मोहनलाल मधुकर; ब्रज लोक वैभव; डॉ. नज़ीर मोहम्मद; ब्रज के लोकगीतन में सास-ननद; पृ.103
9. उद्धृत- सं. मोहनलाल मधुकर; ब्रज लोक वैभव; श्री भगवानदास मकरंद; लोकजीवन में संस्कार गीतन कौ महत्व; पृ.39
10. उद्धृत- माता प्रसाद; लोकगीतों में वेदना और विद्रोह के स्वर; पृ. 30
11. उद्धृत- सं. मोहनलाल मधुकर; ब्रज लोक वैभव; श्री हरीशचंद्र शर्मा; विविध लोकगीत; पृ.198
12. वही; पृ. 197
13. वही; पृ. 210
14. वही; पृ. 215-216

15. वही; पृ. 227

16. वही; पृ. 204

17. प्रमिला के.पी.; स्त्री-अध्ययन की बुनियाद; पृ. 17-18

18. वही; पृ. 46

19. वही; पृ. 93

20. उद्धृत- सं. मोहनलाल मधुकर; ब्रज लोक वैभव; डॉ. त्रिलोकीनाथ 'प्रेमी'; ब्रज के लोकगीतन में पारिवारिक संदर्भ; पृ.79

21. वही; पृ. 85

22. वही; पृ. 86

23. वही; पृ. 86

24. डॉ. सत्येंद्र ; ब्रज लोकसाहित्य का अध्ययन; पृ. 181

25. उद्धृत- सं. मोहनलाल मधुकर; ब्रज लोक वैभव; डॉ. नज़ीर मोहम्मद; ब्रज के लोकगीतन में सास-ननद; पृ.107

26. वही; पृ.107

27. वही; पृ.108

28. रामनरेश त्रिपाठी; कविता कौमुदी (भाग 5वाँ); पृ. 63-64

29. डॉ. कुलदीप; लोकगीतों का विकासात्मक अध्ययन; पृ 128-129

30. वही; पृ. 129-130

31. उद्धृत- सं. मोहनलाल मधुकर; ब्रज लोक वैभव; पृ. 236

32. वही; पृ. 237

33. डॉ. सत्येंद्र ; ब्रज लोकसाहित्य का अध्ययन; पृ. 536

अध्याय 4

▪ आधुनिक युग और लोकसाहित्य :-

○ आधुनिक युग और लोकसाहित्य के विषय में विद्वानों के मत

○ लोकसाहित्य का अस्तित्व

आधुनिक युग का सुत्रपात तकरीबन 19 वीं शताब्दी से हुआ । आधुनिक युग में हिंदी साहित्य, भारतीय समाज एवं संस्कृति के परिवेश में विकास और तकनीक की दृष्टि से महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं । आधुनिक युग में भारत में तेजी से भूमण्डलीकरण के कारण 'वासुदेव कुटुम्बकम' की भावना से ओतप्रोत जगत नई तकनीक की ओर प्रेरित हुआ । जिसका सामान्य रूप से हिंदी साहित्य पर भी हुआ । जिसके अंतर्गत भाषा का विकास, साहित्यिक एवं तकनीकी प्रगति का संचार हुआ । तात्कालीन सामजिक समस्याओं का प्रतिबिम्ब साहित्य में दिखा । हिंदी साहित्य में नए आयाम के साथ साहित्यकारों ने कथा, काव्य, नाटक, निबंध, आदि की उत्कृष्ट रचना की है । आधुनिक युग के सम्यक परिवर्तन को परिमार्जित कर डॉ. रामचन्द्र तिवारी ने लिखा है कि- "आज वैज्ञानिक प्रगति के साथ जीवन में बढ़ती हुई यांत्रिकता ने मानव-मानव के बीच सर्वथा नये सम्बन्धों की सृष्टि की है । आज का मनुष्य व्यवस्था का पुर्जा बन गया है । मानव की रागात्मक चेतना का प्रसार अवरुद्ध हो गया है । मानवीय संवेदना में निरंतर ह्रास होता जा रहा है । मनुष्य बुद्धि एवं तर्क के सहारे समस्याओं का समाधान ढूँढ़ने को विवश है । अब किसी सार्वभौम एवं शाश्वत सत्ता का स्वीकार अनावश्यक प्रतीत होने लगा है । आज का व्यक्ति व्यग्र, दु:खी, निराश, ऊब, और अकेलेपन के अहसास से पीड़ित एवं संत्रस्त है । वह अपने को अजनबी और निर्वासित अनुभव कर रहा है । इस अनुभव को विदेशी प्रभाव कहकर टाला नहीं

जा सकता। विज्ञान की चकित कर देने वाली ध्वंसकारी शक्ति के सामने अपनी विवशता का बोध किसी देश या महाद्वीप तक ही सीमित नहीं है। इसीलिए आधुनिकता आज के प्रत्येक साहित्य विधा को परखने की कसौटी बन गई है।"[1] आधुनिक युग में समयानुसार कालजयी परिवर्तन आये हैं। आज का मानव इलेक्ट्रोनिक संसाधनों का आदि हो गया है। मूल चेतना से परे भावात्मक धरातल पर अपने आप को कृत्रिमता से सुसज्जित पाता है। "मानव आदि काल से अपनी रागात्ममक भावनाओं की भाषागत अभिव्यक्ति गीतों, कहानियों, उक्तियों, आदि के द्वारा करता आया है। भारत में ब्रिटिश शासन के औपनिवेशक, शोषक तथा आतंकवादी स्वरूप प्रभाव लोकपर भी पड़ा। जहाँ उसने अपनी रागात्मक चेतना को गीतों के माध्यम से वाणी दी वहीं उसने ह्रदय से क्रांतिकारी चेतना भी प्रचंड रुप से प्रवाहित हुई। पूँजीवाद समाज में जूझना भी लोक के लिए बहुत बड़ी चुनौती थी। इसी संदर्भ में गौरतलब है कि भारत पिछली शताब्दी के अंतिम दशक में उदारीकरण की नीति के तहत व्यापक होती हुई बाजारीकरण की प्रक्रिया ने अन्य क्षेत्रों के साथ-साथ संस्कृति को भी अपने प्रभाव क्षेत्र में समेट कर बड़ी तेजी से लोकप्रिय संस्कृति में परिवर्तित करना शुरु कर दिया है।"[2]

लोकसाहित्य का जीवन में महत्व को दर्शाते हुए डॉ. कुन्दनलाल उप्रेती का कथन है कि- लोकसाहित्य का किसी देश- विशेष के जनजीवन के लिए सांस्कृतिक महत्व है। किसी देश का समाज, धर्म, साहित्य, दर्शन, लोकसाहित्य में यथार्थ रूप में सुरक्षित है। इसके अध्ययन से हमें देश-विशेष के राष्ट्रीय जीवन का पूरा चित्र मिलता है। इसके साथ ही साथ स्थानीय इतिहास, भूगोल तथा भाषा-सम्बन्धी ज्ञान भी हमें उपलब्ध होता है। अत: लोकसाहित्य का महत्व अभिजात-साहित्य से कहीं अधिक है। यही कारण है कि पश्चिमी देशों में इसके वैज्ञानिक अध्ययन के लिए अनेक 'सोसायटियों' की स्थापना की गई है। भारत में भी अब इसके अध्ययन के लिए अनेक 'संस्थानों' की स्थापना हो चुकी है।"[3] लोकसाहित्य यह लोकमानव का वह मौखिक साहित्य है जो मानव की आर्विभूत होने के साथ ही निष्पन्न हुआ होगा। डॉ. सत्येंद्र ने

"लोकसाहित्य को आदिम मानव की आदिम प्रवृत्तियों का कोष कहा है।"[4] लोकसाहित्य के धरातल एवं शिष्ट साहित्य के अंतर्भाव को स्पष्ट करते हुए डॉ. सत्येंद्र ने कहा है कि- लोक साहित्य का धरातल कई प्रकार का हो जाता है। उन प्रकारों में लौकिक साधारण साहित्य के दो वर्ग हो जाते हैं। चेतन मस्तिष्क के धरातल वाले को 'ग्राम नागरिक साहित्य का नाम दे सकते हैं। इस ग्राम नागरिक साहित्य में भी आपको दो रूप मिलते हैं। एक को सहज और दूसरे को विशिष्ट कह सकते हैं। इनमें ग्रामीण मस्तिष्क भी अपने ज्ञान के वैभव को प्रदर्शित करने के लिए उत्सुक रहता है।"[5] लोकसाहित्य को डॉ. सत्येंद्र ने लोकसाहित्य को इस प्रकार परिभाषित किया है कि- " लोकसाहित्य के अंतर्गत वह समस्त बोली या भाषागत अभिव्यक्ति आती है जिसमें

(अ) आदिम मानस के अवशेष उपलब्ध हों,

(आ) परम्परागत मौखिक क्रम से उपलब्ध बोली या भाषागत अभिव्यक्ति हो जिसे किसी की कृति न कहा जा सके, जिसे श्रुति ही माना जाता हो, और जो लोकमानस की प्रवृत्ति में समायी हुई हो;

(इ) कृतित्व हो किंतु वह लोकमानस के सामान्य तत्वों से युक्त हो कि उसके किसी व्यक्तित्व से साथ सम्बद्ध रहते हुए भी, लोक उसे अपने ही व्यक्तित्व की कृति स्वीकार करे।"[6]

लोक साहित्य के अस्तित्व के एवं ग्रामीण समाज की उपादेयता के विषय में लिखा है कि - "सभ्यता के प्रभाव से दूर रहने वाली अपनी सहजावस्था में वर्तमान जो निरक्षर जनता है उसकी आशा-निराशा, हर्ष-विषाद, जीवन- मरण, लाभ-हानि, सुख-दु:ख, आदि की अभिव्यंजना जिस साहित्य में होती है उसी को लोकसाहित्य कहते हैं। इस प्रकार लोकसाहित्य जनता का वह साहित्य है जो जनता द्वारा, जनता के लिए लिखा गया हो।"[7] लोकसाहित्यिक विधाओं को लोकवेत्ताओं ने लोकगीत, लोक कथा, लोकगाथा, लोक नाट्य, लोक सुभाषित (प्रकीर्ण साहित्य) आदि भागों में विभाजित किया है।

इन सभी ने लोकगीत को लोकसाहित्य की सबसे लोकप्रिय विधा के रूप में स्वीकार्य किया है।

लोकगीतों की बहुलता का प्रमाण इतना है के भारत में बोली जानेवाली भाषा एवं बोलियों में प्रचुर मात्रा में इसकी उपलब्ध्ता है। भारत में नवीनतम विश्लेषण के अनुसार मौजुदा आंकड़ों में 19,500 बोलियाँ है जिसे मातृभाषा की संज्ञा में समाहित कर सकते हैं। प्रत्येक बोली का अपना लोकसाहित्य है। लोकगीत अन्य विधाओं के मुकाबले अधिक प्राप्त होते हैं। "लोकगीत के रचयिता शास्त्रीयता विषयों के ज्ञाता नहीं होता वे प्राय: अशिक्षित होते है अत: पिंगल शास्त्र का ज्ञान उन्हें नहीं के बराबर होता है यही कारण है कि लोकगीतों में छंद सम्बन्धी अनेक दोष होने के कारण लयबद्धता नहीं पाई जाती। परंतु उनकी शब्द योजना एवं स्वरयोजना स्वाभाविक तथा अनुभूतिगम्य होती है। इसी से लोकगीतों में मधुरता, प्रसादगुणयुक्तता एवं सरसता प्रधान रूप से मिलती है।"[8] लोकगीतों के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए लिखा है- "लोकगीतों का मूल उद्देश्य लोकजीवन में उल्लास के जीवन रस को अनुभूत करना है। इससे जीवन की तिक्तता एवं कटुता से मुक्ति मिलती है इस प्रकार लोक्गीत जनजीवन और जनमानस दोनों की ही एक उद्देश्यपूर्ण अभिव्यक्ति करते हैं। इन लोकगीतों के माध्यम से लौकिक जीवन की परंपराएँ आज भी जीवित है। इन परंपराओं का महत्व आज भले ही स्वीकृत हो किंतु यह स्वयं में सत्य है कि ज्यों-ज्यों हम लोक को सहज प्रवृत्तियों से दूर हटकर यांत्रिक सभ्यता की ओर अग्रसर होते जाते हैं, जीवन रस से वंचित भी होते जाते हैं।"[9] डॉ. कृष्ण देव उपाध्याय के अनुसार "लोकगीतों में बुद्धिकौशल और साज-सज्जा का काम नहीं होता। लोकगीत वास्तव में आत्म तत्त्व से अनुप्राणित होने से संस्कृति के प्रतीक हैं।"[10] लोकगीतों को संगीतमय रूप से प्रस्तुत करने का श्रेय हमारी ग्रामीण महिलाओं को है, गृहस्थ जीवन की व्यस्तता में भी महिलाएं सिल पर मसाले पीसते समय, रसोई घर में काम करते समय, चक्की चलाते समय, खेतों में काम करते समय, कुँए से पानी भरते समय, गाय भैंस को चारा व दूध

निकालते समय, कोई न कोई गीत गुनगुनाती रहती होंगी साथी अन्य महिलाओं के सहयोग से गीत की पंक्तियों का निर्माण हुआ होगा। इस तरह गीतों के निर्माण में और लोकसाहित्य के अस्तित्व को कायम रखने में स्त्रीयों का महत्वपूर्ण योगदान है।

लोक साहित्य के अस्तित्व के विषय में विद्वानों ने अंवेष्ण एवं अथक परिश्रम के बाद लोकसाहित्य को लिपिबद्ध किया है। जिनमें डॉ. सत्येंद्र, आचार्य रामनरेश त्रिपाठी, डॉ. कुन्दनलाल उप्रेती, डॉ. श्याम परमार, डॉ. कृष्ण देव उपादध्याय, डॉ. कुलदीप, डॉ. मोहनलाल मधुकर, डॉ. बापूराव देसाई आदि का योगदान सराहनीय है।

लोकसाहित्य के भविष्य को लेकर विद्वान चिंतित नज़र आये हैं। डॉ. विजयपाल सिंह ने लोकसाहित्य को भविष्य में परिरक्षित रखने हेतु सुझाव देते हुए कहा है कि- "लोक की भावनाओं को व्यक्त करने वाली व्यक्तित्व हीन अभिव्यक्ति को लोकसाहित्य कहा जा सकता है। लोकसाहित्य प्रधानत: मौखिक एवं परम्परागत होता है। इसकी परम्परा अत्यंत प्राचीन है, उतनी प्राचीन जितनी शायद मानव जाति। परन्तु खेद है कि इस साहित्य की ओर जितना ध्यान विद्वानों को देना चाहिए उतना नहीं दिया गया। इधर कुछ विद्वानों के प्रयास तथा प्रेरणा से लोकसाहित्य सम्बन्धी कार्य किया जा रहा है और करवाया भी जा रहा है। अनेक विश्वविद्यालयों ने हिन्दी के एम.ए. के पाठ्यक्रम में एक वैकल्पिक प्रश्न- पत्र के रूप में लोकसाहित्य के अध्ययन को स्थान दिया है। अत: इस विषय के विद्यार्थियों के लिए एक पाठ्य ग्रंथ की महती आवश्यकता अनुभव की जा रही है।"[11] आधुनिक युग में अन्य विषय की तुलना में इतना प्रभावशाली नहीं है। लोकमानव की अभिव्यक्ति का परिमार्जन साहित्यकारों एवं शोध प्रेमि अध्येताओं ने किया है। लोकसाहित्यिक विधाओं का संकलन एवं संशोधन कर इस अमूल्य विरासत को संझोया जा सकता है। युगीन परिस्थितियों के बदलाव के कारण लोकसाहित्य में नवीन चेतना का सूत्रपात हुआ।

लोकसाहित्य भविष्य में जीवंत रहे उसके लिए नए लेखकों और कवियों को लोकसंस्कृति को अहमितय देते हुए संरक्षण का कार्य करना चाहिए। तात्कालीन समाज में लोकसाहित्य विभिन्न प्रेरणाओं, समसामयिक मुद्दों और समाजिक परिवर्तन का परिचय देता है। कालजयी लोककथा, लोकगाथा, लोकगीत एवं लोकनाट्य मात्र धार्मिक दृष्टि से समाज में उपस्थित है। पुरात्व संस्कृति एवं इतिहास घटित गतिविधियों में लोकसाहित्य की उपस्थिति को अनदेखा नहीं किया जा सकता है। अपनी सांस्कृतिक विरासत एवं संस्कृति को भविष्य में सश्क्त बनाने हेतु लोक साहित्य अध्येताओं को अथक परिश्रम करना होगा। भविष्य में लोकसाहित्य भाषा और क्षेत्रीय बोलियों के साहित्य का उदघाटन कर लोकसाहित्य के क्षेत्र में नए और युवा लेखक,कवि का उदय अलग-अलग क्षेत्रों की सांस्कृतिक धरोहर के प्रसार होगा। आलोचनात्मक दृष्टिकोण से लोकसाहित्य सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन के साथ बदलता रहा है जिसका प्रभाव समान्य रुप से देखा जा सकता है। विभिन्न समसामयिक मुद्दों को, तात्कालीन परिस्थितियों को नये शोध अध्येता परिवर्तित साहित्य के अंतर्गत रखकर प्रकाशित कर सकते हैं। लोकसाहित्य का भविष्य बहुत ही उद्धाटनात्मक है साहित्यिक समृद्धि, सामाजिक परिवर्तन, और सांस्कृतिक समृद्धि के साथ लोक साहित्य को जोड़ा जा सकता है।

वैज्ञानिक तकनीकों का आगमन लोकसाहित्य को विशेष रूप से इंटरनेट विश्वपटल पर व्याप्त है। इस डिजिटाइजेशन के माध्यम से अपना विस्तार कर सकता है और नए प्रारूपों में विकसित हो सकता है। इसलिए लोकसाहित्य का भविष्य साहित्यिक सृजनात्मकता और सामाजिक परिवर्तन के साथ जुड़ा है। जिसका संरक्षण एवं संकलन करना अतिआवश्यक है। इंटरनेट की सहायता से आज हम वेबसाइट्स, ब्लॉग्स, सोशल मीडिया, और पॉडकास्ट्स के माध्यम से लोकसाहित्य की उपयोगिता को सिद्ध कर अपने सांस्कृतिक मूल्यों का संचार भविष्य में जीवंत रख सकते हैं।

- **लोकसाहित्य का संकलन एवं संरक्षण**

  - **प्रकाशित एवं अप्रकाशित लोकसाहित्य**

  - **पुनरावृत्ति एवं नवीन भाषिक बदलाव**

"लोकसाहित्य की आधार शिला धर्म की धरती पर ही टिकी हुई है। धर्म लोकजीवन का प्राण है , बल है। और भारतीयों का जीवन तो धर्ममय है। अत: भारतीय लोकसाहित्य की पृष्ठभूमि धर्म ही है। यही कारण है कि हमारे लोकसाहित्य में धार्मिक भावनाओं का प्रकाशन किसी न किसी रूप में हुआ है। लोकगीत, लोकगाथा, लोककाथा, लोकनाट्य, लोककला, लोकसंगीत, लोकनृत्य, तथा कहावतें, मुहावरे, पहेलियाँ, सूक्तियाँ आदि में धर्म- सम्बंधी विचारों तथा भावनाओं का प्रकाशन हुआ है।"[12] पारंपरिक और सांस्कृतिक धरोहर को धार्मिक विश्वास के माध्यम से प्रगाढ़ किया है। "लोकसाहित्य के सभी अंगों में धर्म उसी प्रकार से वर्तमान है जिस प्रकार से माला की प्रत्येक मनिका में सूत्र। धर्म की अनुस्यूतता के कारण ही जनता का साहित्य इतना लोकप्रिय हो सका है। इसी हेतु इसको इतना स्थायित्व प्राप्त हो सका है।"[13]

लोकसाहित्य का संकलन एवं संरक्षण की प्रेरणा पाश्चात्य अध्येताओं से भारत में आयी। भारत में लोकसाहित्य के अध्ययन की ओर अंग्रेजों के शासन काल से आरंभ हुआ लगभग 18वीं शताब्दी में "सर विलियम जोन्स ने 'एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल नामक शोध संस्थान की स्थापना कलकत्ते में की 19वीं शताब्दी में अंग्रेजी शासकों ने जिनमें कुछ योग्य विद्वान भी थे भारतीय संस्कृति के प्रति अपनी जिज्ञासा प्रकट की और इस क्षेत्र में कार्य करना प्रारम्भ किया। बस, यहीं से भारतीय लोकसाहित्य के अध्ययन की नींव पड़ी।"[14] "कर्नल टाड ने राजस्थान की सामाजिक अवस्था, रहन-सहन, आचार-विचार, वेश-भूषा, आदि का

अध्ययन कर ‘एनल्स एन्ड एंटीक्विटीज ऑफ राजस्थान नामक प्रसिद्ध ग्रंथ सन् 1829 ई. में प्रकाशित किया।”[15] दक्षिण भारतीय लोक साहित्य में 1868 ई. में अंग्रेजी साहित्यकार महिला फ्रगर ने दक्षिण भारतीय लोककथाओं को ‘ओल्ड डकन डेज’ नामक पुस्तक में संग्रहित किया था। इसके अलावा “दक्षिण लोकगीतों पर चार्ल्स ई. गोवर ने सन् 1871 में एक पुस्तक ‘फोकसॉन्गास ऑफ सर्दन इंडिया’ नामक सम्पादित की। भारतीय लोकगीतों का यह सर्वप्रथम संग्रह है जिसमें कन्नड़, कुर्ग, तमिल, तेलुगु, मलयालम तथा कूरल के लोकगीतों का सुंदर अंग्रेजी अनुवाद किया गया था।”[16] भाषागत जागरुकता के बाद भारतीय लोकसाहित्यकारों संशोधन के कार्य किए जिसके अंतर्गत भारत के विविध प्रांतों में शोध संस्थान स्थापित हुए और लोकगीत एवं लोककथा., लोकगाथा आदि प्रकाश में आए। “डॉ. दिनेश चंद्र सेन ने बंगला लोकसाहित्य पर अपने भाषणों को ‘फोकलिटरेचर ऑफ बंगाल नाम से प्रकाशित करवाया।”[17] “गुजराती लोकसाहित्य के एकांत सावक श्री झवेरचंद मेघाणी का नाम सदा अमर रहेगा। उन्होंने गुजराती लोकसाहित्य पर इतना कार्य किया है कि उन्हीं के कार्यों पर अलग से एक शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत किया जा सकता है। उनकी संकलन-पद्धति, विवेचन- पद्धति, समालोचनात्मक दृष्टी आनेवाले अध्येताओं के लिए एक उज्जवल उदाहरण होंगे।”[18] इसके साथ ही बिहार की बोलियाँ, मराठी लोकसाहित्य को संकलित कर प्रकाशित किया गया है। 20वीं शताब्दी में पंडित रामनरेश त्रिपाठी जी ने सन् 1929 में कविता कौमुदी के 5वें संस्करण में कई प्रांतों में घुम-घुमकर ग्रामगीतों का प्रकाशन किया जो भारतीय लोकसाहित्य की अमूल्य विरासत है। राजस्थानी लोक वार्ताओं का संकलन का कार्यभार डॉ. वासुदेव अग्रवाल और बनारसीदास चतुर्वेदी ने संभाला। डॉ. वासुदेव अग्रवाल ने मथुरा में सन् 1940 में ब्रज साहित्य मंडल की स्थापना की जहाँ से ‘ब्रजभारती’ नामक त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ। डॉ. वासुदेव अग्रवाल की पुस्तक ‘पृथिवी पुत्र’ डॉ. सत्येंद्र ने ‘ब्रज लोकसाहित्य का अध्ययन’ ग्रथों के प्रकाशन के अप्रकाशित साहित्य को सफल रूप से प्रकाशित किया गया।

“स्व. राहुल जी ने सन् 1937 ई. में लोकसाहित्य संकलन की एक योजना तैयार की जिसके आधार पर अनेक जनपदीय संस्थाओं का निर्माण हुआ। गढ़वाल में गढ़वाली साहित्य परिषद, बघेलखंड में ‘रघुराम साहित्य परिषद’, भोजपुर में ‘भोजपुरी लोकसाहित्य परिषद’, राजस्थान में ‘भारतीय लोककला मंडल’ , तथा मालवा का ‘मालव लोकसाहित्य परिषद’ आदि कुछ संस्थाओं की स्थापना हुई।”[19]

सन् 1958 ई. में ‘भारतीय लोकसंस्कृति शोध संस्थान’ की स्थापना हुई। जहाँ से ‘लोकसंस्कृति’ नामक त्रैमासिक पत्रिका प्रकाशित हुई। जिसमें संस्थापक के रुप में पं. ब्रजमोहन व्यास, श्री कृष्णदास, डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय कार्यरत रहे। इसके साथ ही लोकसाहित्य अध्येताओं ने भारत के विविध बोलियों एवं भाषा का अप्रकाशित लोकसाहित्य प्रकाशित कर उस क्षेत्र के लोकसाहित्य का अस्तित्व कायम किया। डॉ. बाबूराम सक्सेना ने ‘अवधी भाषा का विकास’ पुस्तक में अवधी के लोकगीतों का संकलन कर प्रकाशित किया इस क्रम में ‘मालवी लोकगीत’ के रचयिता डॉ. श्याम परमार, श्री श्यामाचरण दूबे ‘छत्तीसगढ़ी लोकगीतों का परिचय, कौरवी और खड़ीबोली पर राहुल सांकृत्यायन ने ‘आदि हिंदी के गीत तथा कहानियाँ’,‘भोजपुरी लोकसाहित्य का अध्ययन’, ‘लोक साहित्य की भूमिका’ नामक पुस्तक डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने प्रकाशित की है।

लोकसाहित्य के अप्रकाशित साहित्य के संरक्षण कर प्रकाशित करने में सभी साहित्यकारों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। जिसके किए हम और हमारी संस्कृति ऋणी इनकी रहेगी। लोकसाहित्य के संकलन और संरक्षण के विषय में डॉ. कुन्दनलाल उप्रेती का कथन है कि- “लोकसाहित्य संस्थानों को इस ओर ध्यान देना चाहिए विशेष गाँवों में छोटे-छोटे केंद्र स्थापित कर संकलन की व्यवस्था करनी चाहिए।”[20]

सरकार को नये संशोधन केंद्र स्थापित कर लोक साहित्य के संकलन का कार्य करना चाहिए।

आधुनिक युग में नवीनतम तकनीक एवं सुविधाएं हैं जिससे आसानी से लोकसाहित्य संरक्षण और प्रसारण किया जा सकता है। जिसमें डिजिटल संकलन के अंतर्गत स्मार्टफोन, स्मार्ट कैमरा, इंटरनेट की सहायता से ऑनलाइन डेटाबेस बनाकर उचित वेबसाइट एवं एप आदि का उपयोग कर लोकसाहित्य का संकलन कर उसे डिजिटल फॉर्मेट संरक्षित कर सकते हैं। जिसके तहत आज के युवा एवं समाज को समर्थन देने की आवश्यकता है। सांस्कृतिक संस्थानों का समर्थन, साहित्योत्सव और प्रदर्शनी में लोकसाहित्य का उत्सव कार्य क्रम कर शैक्षणिक संस्थानों का समर्थन आदि। यदि शैक्षणिक संस्थानों में कार्यक्रमों के माध्यम से लोगों को लोकसाहित्य के महत्व और संरक्षण के बारे में शिक्षा दी जाए तो आनेवाले समय में नवीनतम संशोधन होंगे जिससे अप्रकाशित साहित्य प्राप्त हो सकता है और डिजिटाइज़ेशन की सहायता से लोकगीतों, कहानियों और कला के प्रतिरूपों का संग्रहण कर उसे सुरक्षित रख सकते हैं।

लोकसाहित्य के प्रतिष्ठित कलाकारों को प्रात्साहित किया जा सकता है। ये कलाकार अपनी कला का निर्वहन अगली पीड़ी को तभी देंगे या सिखायेंगे। लोकसाहित्य का संकलन और संरक्षण आधुनिक युग में भी विशेष महत्व रखता है क्योंकि यह हमारी सांस्कृतिक धरोहर है और जिसको सुरक्षित रखना हमारा दायित्व है।

लोकसाहित्य में पुनरावृत्ति का सिलसिला आम हो गया है। विश्वविद्यालायों में पी-एच. डी. उपाधि हेतु लोकसाहित्य विषय पर शोध कार्य किए जा रहे हैं। मुख्यत: शोधार्थी उपलब्ध सामग्री को संदर्भ के रूप में उपयोग कर अध्यापन सम्पूर्ण करते है जिसमें अधिकांशत: पुनरावृत्ति देखी जा सकती है। लोकसाहित्य में मूल भाषा और शैली का ध्यान रखते हुए नए गीतों एवं कथाओं का संकलन कर प्रकाशित करना चाहिए जिससे हम सांस्कृतिक को विरासत सजीव रख सकेंगे।

लोकसाहित्य में पुनरावृत्ति से बचने के लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान देना आवश्यक है।

- नवीन और अद्वितीय सामग्री से लोकसाहित्य में संशोधित साम्रगी आकर्षक और नवीन लगेगी, जिससे पुनरावृत्ति को रोका जा सकता है।

- नवीन रचनात्मक अद्यतन से संशोधन में कार्य करने से समय-समय पर अद्यतन कर नए विचार और सामाजिक परिवर्तन के कारण लोकसाहित्यिक बदलाव में सहायता प्राप्त होगी। जिससे समाज को नई प्रेरणा और दिशाएँ प्रदान की जा सकती हैं, और हम आप पुरानी सभ्यता से जुड़े रहेंगे

- सामाजिक (सोशल) मीडिया का उपयोग जिस तरह से आधुनिक युग में बढ़ रहा है उससे लोकसाहित्य के गीतों और कथाओं, नाट्य को सामाजिक मीडिया के सही तरीके से उपयोग कर इंटरनेट के आंतरिक जाल की सहायता से घर-घर पहुँचा कर लोकसाहित्य को पुनरावृत्ति से बचाया जा सकता है। जिसमें कॉपीराइट का अधिकार प्रत्येक सामग्री निर्माता (content creator) मदद करेगा।

लोक साहित्य में सांस्कृतिक बदलाव समय के साथ आए हैं जिसका प्रभाव सांस्कृतिक परिवेश पर सामान्य रूप से होता है। नई पीढ़ियाँ अपनी पारंपरिक साहित्यिक धरोहर को उपेक्षा करती हैं, तो लोकसाहित्य का अस्तित्व लुप्त हो सकता है। लोक साहित्य भाषा में परिवर्तन हुए हैं समयानुसार क्षेत्रिय बोली एवं भाषा में परिवर्तन होते हैं जिसका प्रभाव लोकसाहित्य की भाषा पर समान रूप से होता है। ग्रामीण व्यक्ति रोजगार की तलाश में एक राज्य से दुसरे राज्य पलायन करते हैं जिससे न केवल उनकी संस्कृति अपितु भाषा पर भी बदलाव आते हैं। जिससे एक मिली झुली भाषा का संचार होता है और लोग नए शब्दों का प्रयोग लोकसाहित्यिक विधाओं में भी करते हैं।

समाज में बदलते परिवेश और आधुनिकता ने लोकसाहित्य का अस्तित्व नई दिशा में मोड़ दिया है। आज का मनुष्य परम्परा के बंधन से मुक्त होना चाहता है उसकी नई आवश्यकएं हैं वह अपनी संस्कृति को मात्र रूढ़िवादी मानता है यही मानसिकता लोक साहित्य के लुप्त होने का बड़ा कारण बन रही है। शहरीकरण बाद शिक्षा प्राप्त करने के बाद, कामकाजी पुरुष मात्र धार्मिक उद्देश्य से कथा व गीत का कार्यक्रम करता है। लोग स्थायी रूप से मात्र धर्म के लिए लोकसाहित्य को उपयोग करते हैं। जिससे पारंपरिक साहित्य का संचार आनेवाली में न के बराबर होगी। लोक साहित्य के प्रति उदासीनता का माहौल बढ़्ता जा रहा है।

उपर्युक्त कारणों के संयोजन से लोकसाहित्य का अस्तित्व लुप्त होने की कगार पर आ सकता है, लेकिन यह हमेशा समृद्धि के लिए संजीव रह सकता है यदि लोग अपनी सांस्कृतिक पारंपरिकता के साथ-साथ नए माध्यमों में भी अपने साहित्य को जिवित रखने का प्रयास करें तो यह मुमकिन है।

➢ निष्कर्ष :

लोकसाहित्य यह सामाजिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक विरासत का महत्वपूर्ण हिस्सा है। आधुनिक युग में लोकसाहित्य के प्रति सामाजिक जागरूकता को बढ़ावा देना आवश्यक है, और यह समसामयिक मुद्दों पर चर्चा करने का माध्यम बन सामाजिक सुधार के लिए जागरूकता फैलाने में उपयोगी साबित हो सकता है। लोकसाहित्य के प्रति लोगों को उनकी रूचि और पारंपरिक विरासत के प्रति जागरूकता लाने की आवश्यकता है। समाजिक बदलाव के अंतर्गत लोकसाहित्य के माध्यम से लोग आपसी समृद्धि और समाजिक न्याय के प्रति जागरूक हो और समाज में सुधार को बढ़ावा देने में सहायता करें।

भारत में 19500 बोलियाँ एवं भाषाएं हैं जिसका अपना अलग लोकसाहित्य विद्यमान है। कुछ लोकसाहित्य अभी भी अप्रकाशित है और उसे संरक्षित करने का दायित्व हमारा है। जिस तरह आज का व्यक्ति दुनिया की भाग-दौड़ में व्यस्त होता जा रहा है अपनी संस्कृति को कहीं पीछे छोड़ रहा है। भाषा को बचाने और लोकसाहित्य को बढ़ावा देने के लिए इन्हें लौटना होगा। इस संदर्भ में रामनरेश त्रिपाठी जी का कथन है कि- "मैं एक अच्छे अनुभवी की हैसियत से अपने उन मित्रों से जो कौवाली और टप्पे सुनने को बाहर मारे-मारे फिरते हैं, सानुरोध कहता हूँ कि लौटो, अपने अंत: पूरों को लौटो।"[21]

लोकसाहित्य संस्कृति और सामाजिक दृष्टी से आधुनिक युग में भी समाज को सशक्त करने और सुधार करने के लिए महत्वपूर्ण है। वैज्ञानिक प्रगति और तकनीकी क्रांति के कारण आधुनिक युग में जैसे कि इंटरनेट, कंप्यूटर, और मोबाइल टेक्नोलॉजी, सोशल मीडिया, वायरल वीडियो और कंटेंट बनाकर भी लोकसाहित्य का प्रचार प्रसार किया जा सकता है। लोकसाहित्य आम जनमानस के जीवन को सफल व समृद्ध बनाने में भूमिका निभाता है और जनमानस के साथ साथ साहित्य को भी सुदृढ़ता प्रदान करता है। आधुनिक तकनीकी युग में साहित्यिक सामग्री ऑनलाइन प्राप्त की जा सकती है।

साक्षात्कार

नाम : जफर

उमर : 45 वर्ष

जन्म स्थल : माहेरेरा

दक्षता : नृत्य एवं लोकगीत

प्रश्न 1. आपका नाम क्या है ? आप कबसे इस क्षेत्र में कार्यरत हैं ?

उत्तर : मेरा नाम जफर है। मै पेशे से भांड हूँ , मेरे परिवार की लगभग हर पीढ़ी इस क्षेत्र में सदियों से कार्यरत है मेरे घर परिवार में सब ढोल ताशे बजाकर रोजगार कमाते है।

प्रश्न 2. आपने किससे गाना सिखा और आप को ये गीत कहां से प्राप्त हुए हैं ?

उत्तर : जैसा मैंने पहले बताया के पुस्तों से गाते बजाते आ रहे है और खुद गीत की रचना भी करते है। बाकी के गीत पूर्वजों ने दिए ऐसा कह सकता हूँ आज के समय में सबको कुछ नया चाहिए इसी नये की चाह में हम फिल्मी तर्ज पर भी गीत गाते हैं जिससे लोग हमें रोजगार दे और हमारा घर चल सके।

प्रश्न 3. क्या आप जानते हैं आप जिस कला क्षेत्र से जुड़े हैं वह वास्तव में लोकसाहित्य के नाम से जाना जाता है ? आप जो बचपन से रटे हुए हैं वह लोकसाहित्य की कला है जिसे लोकगीत कहते है और जो आप जैसे कलाकारों के कारण आज भी संरक्षित है।

उत्तर- न मुझे नहीं पता ऐसा भी कुछ होता है। मैं तो अनपढ़ हूँ मुझे लगता है बचपन से जो मैं गा रहा हूँ वह साहित्य है जिसकी इतनी इज्जत है हमें तो यह बस सटे मिल मिला के तुकबंदी बिठा के बना हुआ नाच का गीत लगता है। मैं अपने बेटे को बताउंगा की हमारी कला व्यर्थ नहीं है।

प्रश्न 4. क्या आपको पता है इन गीतों का निर्माण कैसे हुआ और आप तक कैसे पहुँचे ?

उत्तर : मैंने अपने पिता एवं दादा के साथ बहुत जगह नाच किया है। ये गीत उन्होंने लोगों ने तुकबंदी और तात्कालीन परिस्थितियों को ध्यान में रखकर रचे होंगे या उन्हें भी इनका स्रोत नहीं पता होगा। मैं बचपन से ही लड़कियों के वस्त्र पहनकर शादी ब्याह, मुंडन, भात महफिल में जाया करता था तब लोग उन्हें सम्मान से बुलाते थे। लेकिन आज हम खुद किसी के घर पुत्र जन्मावसर, बहू के आने पर सब ढोल-ताशे लेकर पहुँच जाते है और कुछ नेग मिल जाता है उससे घर चलाते हैं।

प्रश्न 5. आपके उत्तर के आधार पर आज के समय में और बीते समय यानी आपके पूर्वजों के समय में क्या अंतर है ? और आप की इस पर क्या प्रतिक्रिया है ?

उत्तर : मैं कहुंगा पुराने समय में जैसा भी भेदभाव अस्पृश्यता थी आज के समय से बेहतर थी। ऐसा इसलिए वो समय हमारी कला की कद्र करता था और हमारे बिना हर संस्कार,

उत्सव, समारोह फिंके हो जाते थे। आज के समय में हमारी उपस्थिति अनिवार्य नहीं विकल्प मात्र हैं। मैं आज सोचता हूँ यदि शिक्षित होता तो नौकरी कर अपने परिवार का भरण-पोषण बेहतर तरीके से कर सकता। आज के मँहगाई के ज़माने में इस कला से जीवन का गुजारा नहीं हो सकता।

प्रश्न 6. मैं इस विषय पर कार्य करते समय भारी उदासीनता का समाना कर चूंकी हूँ। आप का कष्ट मैं समझ सकती हूँ। आप जिस कला के धनी हैं जिस संस्कृति की धरोहर का निर्वाह आप कर रहे हैं वह अमूल्य है आपको क्या लगता है इस कला या साहित्य का भविष्य का कैसा होगा ?

उत्तर : ये गीत धीरे-धीरे खत्म हो जायेंगे आजकल के युवा इसमें खास दिलचस्पी नहीं लेते जिसका सबसे बड़ा कारण मोबाइल फोन है जिसने आज के युवा को अपना आदि बना दिया। फिल्मी गीत लोगों को ज्यादा पसंद है और उसी पर नाच गाकर लोग विडियो बनाते है। कुछ हद तक लोग गीत याद रखे हुए हैं वो सारे लोग मेरी उमर के होंगे आजकल शहरीकरण के कारण लोग अपनी गाँव देहात की भाषा को भी बोलना अपमान समझते है।

प्रश्न 7. यदि मैं आपके द्वारा गाये गए गीतों को शोध प्रबंध में प्रकाशित करू तो इससे आपको कोई आपत्ति है ? मैंने बहुत ही उमदा गीत यहाँ सुने मैं आपका नाम लिखकर ही गीतों का प्रकाशन कराउंगी आशा है कि आप इस बात से प्रसन्न होंगे !

उत्तर : नहीं मुझे कोई आपत्ति नहीं है। ये गीत संरक्षित हो जायेंगे इससे बड़ी क्या बात है। धन्यवाद आपने हमें इतने सम्मान से बुलाया जिसकी सराहना करता हूँ। आप अपने कार्य में सफल हो ऐसी कामना करता हूँ।

नाम : जैतुन बेगम अब्बासी

उमर : 60 वर्ष

जन्म स्थल : ग्राम : कमालपुर, कासगंज

दक्षता : नृत्य एवं लोकगीत

प्रश्न 1.आपका नाम क्या है ? आप कबसे इस क्षेत्र में कार्यरत हैं ?

उत्तर : मेरा नाम जैतुन है। मेरा विवाह कल्लू सक्के से इस गांव में हुआ था। हम जाति से भिश्ती हैं। मैं अपने माता-पिता के साथ बचपन से शादि- विवाह और विभिन्न उत्सवों पर उनके साथ जाती थी, मेरी जितनी भी उमर है जबसे बालक बोलना सीखे मैंने गाना सीखा। 55 साल तो मान ही सकते हैं।

प्रश्न 2. क्या आप जानते हैं आप जिस कला क्षेत्र से जुड़े हैं वह वास्तव में लोकसाहित्य है और आप इतने सालों से लोकगीत गा रहीं हैं ?

उत्तर : न बेटा मुझे इसकी जानकारी नहीं है ऐसा भी कुछ साहित्य है। ये गीत तो हमें आनंदित करते हैं और जो कुछ समाज में होता है वो किसी से छुपा नहीं है ये गीत उन सभी बातों को कह देते हैं और हमारे साथ-साथ और भी महिलाएँ ये गीत गाकर खुश हो जाती है। हमारे लिए यही बहुत है।

प्रश्न 3. क्या आपको पता है इन गीतों का निर्माण कैसे हुआ और आप तक कैसे पहुँचे ?

उत्तर : नहीं पता लेकिन बचपन से गा रही हूँ तो उसके आधार पर इतना कह सकती हूँ ये गीत किसी एक के नहीं है सभी के हैं। जब हमारी माँ काम करते समय या खेतों में गाती थी तो आसपास जो भी महिलाएँ मेहनत मजदूरी करती वे साथ- साथ गाती अगर किसी पंक्ति की तुकबंदी सटीक न बैठती तो वे उसे बदल लेती और रोचक बनाने का प्रयास करती। तो ये गीत ऐसे बने है इनमें मेहनत का पसीना, ग़म के आंसु और हंसी के ठहाके आदि के मिश्रण से निर्मित ये गीत हमारी अपनी निजी पुंजी है।

प्रश्न 4 .लोकगीतों का भविष्य कैसा होगा आपकी दृष्टी से ?

उत्तर : मेरी नज़र में बेटा ये कोई ज्यादा लोगों आज पता भी नहीं होगा के ये गीत क्या है। फिल्मी धुन सभी को याद रहती है। मैंने गाँव में जब फिल्मी गीतों का चलन देखा तो एहसास हुआ के हम लोग और हमारी कला अब खत्म हो रही है। कोई भी अपने बाल-बच्चों को हमारी तरह गाना नहीं सिखाना चाहता फिल्मी गीत तो आज कल सब पैदा होते ही मोबाइल पर देख रहे है। गीतों का भविष्य हमारे खत्म होते ही खत्म हो जायेगा।

प्रश्न 5. प्राचीन समय में और आधुनिक युग में लोकसाहित्य में क्या अंतर आया है ? और आपकी स्थिति पहले और आज में कैसी है?

उत्तर : पहले का जमाने में ऊँच-नीच छुआ-छुत ज्यादा था अब इतना नहीं है। सरकार के नियम कानून के कारण कहो या आधुनिक युग का प्रभाव। मैं बचपन में गीत गाती थी लोग मुझे ईनाम देते थे सम्मान भी देते थे। हमे आदर के साथ कार्यक्रम में महिनों पहले से आमंत्रित किया जाता था। लेकिन आज शादी-ब्याह में हमें कूड़ा बरतन साफ करने के लिए बुलाया जाता है। रोजगार के लिए हमें ये सब करना पड़ता है।

प्रश्न 6 : मैं आपके द्वारा गाये गए गीतों को शोध प्रबंध में प्रकाशित करूँ तो इससे आपको कोई आपत्ति है ? मैंने बहुत ही उमदा गीत यहाँ सुने मैं आपका नाम लिखकर ही गीतों का प्रकाशन कराउंगी आशा है कि आप इस बात से प्रसन्न होंगी !

उत्तर : ये गीत मेरे है ऐसा मैं नहीं कहुंगी ये सबके है और इनगीतों को तुम भी अपना कह सकती हो। आजकल किसी को गीत की पंक्तियाँ याद नहीं आती है। आज बहुत अरसे बाद मैंने इतने गीत गाए हैं मन हल्का हो गया। मेरी ईश्वर से प्रार्थना है के तुम खुश रहो और अपने कार्य में सिद्धि प्राप्त करो।

नाम : मेहरुन्निसा अब्बासी

उमर : 40 वर्ष

जन्म स्थल एवं ग्राम : कमालपुर, कासगंज

निवास स्थल : गनेशपुर

दक्षता : नृत्य एवं लोकगीत

प्रश्न 1.आपका नाम क्या है ? आप कबसे इस क्षेत्र में कार्यरत हैं ?

उत्तर : मेरा नाम मेहरुन्निसा अब्बासी है। मैं जैतून अब्बासी की बेटी हूँ। मैं बचपन अपनी माँ के साथ समारोह में जाती थी और उन्हीं के साथ गाती थी। मुझे गाने की कला माँ से मिली है। मैं शादी के बाद कम गाती हूँ। क्योंकि वक़्त नहीं मिलता और आज का समय बदल चुका है।

प्रश्न 2. क्या आप जानते हैं आप जिस कला क्षेत्र से जुड़े हैं वह वास्तव में लोकसाहित्य है और आप इतने सालों से लोकगीत गा रहीं हैं ?

उत्तर : नहीं मैं इस बात से परिचित नहीं हूँ। लेकिन इतना जानती हूँ के मंडलीवाले इसे ग्राम गीत कहते हैं। ये गीत हमें खुशी देते है मन प्रफुल्लित हो जाता है जब भी इन गीतों की धुन भी कानों में पड़ती है।

प्रश्न 3. क्या आपको पता है इन गीतों का निर्माण कैसे हुआ और आप तक कैसे पहुँचे ?

उत्तर : मैंने ये गीत अपनी माँ से सीखे हैं। और इसके निर्माण और स्त्रोत की जानकारी मुझे नहीं है।

प्रश्न 5. प्राचीन समय में और आधुनिक युग के लोकसाहित्य में क्या अंतर आया है ? और आपकी स्थिति पहले और आज में कैसी है?

उत्तर : प्राचीन समय में और आधुनिक युग के लोकसाहित्य में बहुत अंतर है। पहले की महिलाएं ढोल- ताशे न मिलने पर भी थाली, बेलन और तसले बजाकर गीत के संगीत का निर्माण करती थी। उस वक़्त में बहुत रौनक थी आज डी जे का जमाना है फिल्मी गीत और अन्य भाषाओं के गीत बजाकर समारोह एवं उत्सव मनाए जाते हैं। आज हमारी स्थिति अलग है मेरे पिता कल्लू (सक्के) के नाम से गाँव में प्रख्यात है पहले मेरे पिता मशक में पानी भर शादी बारातों में लोगो को पानी पिलाते थे मेरे भाई शादी में भोजन खाने-खिलाने से लेकर बरतन साफ करने तक सारा काम करते थे। आज वो शहरों की ओर पलायन कर गये हैं और यहाँ तो अब मंडप वाले सारा काम करते हैं और दूगना दाम वसुलते है। कुल मिलाकर कहुं तो आज हम रोजगार और आर्थिक तंगी से जूझ रहे है।

नाम : मैसर खान (गायक/ कव्वाल)

उमर : 56 वर्ष

जन्म स्थल एवं ग्राम : कमालपुर, कासगंज

दक्षता : नृत्य एवं लोकगीत

प्रश्न 1. आपका नाम क्या है ? आप कबसे इस क्षेत्र में कार्यरत हैं ?

उत्तर : मेरा नाम मैसर खान है। मैं बचपन से समारोह में जाता था। मुझे गाने की कला मेरे पूर्वजों से मिली है। मैं 40 साल से गा रहा हूँ। मैं ग्रामगीत, कव्वाली, फिल्मी गीत, और भजन भी गाता हूँ।

प्रश्न 2. क्या आप जानते हैं आप जिस कला क्षेत्र से जुड़े हैं वह वास्तव में लोकसाहित्य है और आप इतने सालों से लोकगीत गा रहीं हैं ?

उत्तर : हाँ मैं जानता हूँ। मैं अलग-अलग मंडली में जाता रहा हूँ। और गायकों के साथ भेंट करने के बाद ये जानकारी मिली। सभी गायक अपने-अपने क्षेत्र के गीत गाते थे। मैं भी अपने क्षेत्र के गीत गाता था। मैं लोकगीत गाता भी हूँ और लोकगीतों को आज के समय के हिसाब बदल भी देता हूँ।

प्रश्न 3 .क्या आपको पता है इन गीतों का निर्माण कैसे हुआ और आप तक कैसे पहुँचे ?

उत्तर : मैंने ये गीत अपने पूर्वजों से सीखे हैं। और इसके निर्माण और स्त्रोत की जानकारी मुझे नहीं है।

प्रश्न 5. प्राचीन समय में और आधुनिक युग के लोकसाहित्य में क्या अंतर आया है ? और आपकी स्थिति पहले और आज में कैसी है?

उत्तर : बदलाव प्रकृति का नियम है। प्राचीन समय और आधुनिक समय में बहुत अंतर है। प्राचीन मानव कला का कदरदान था। हमें बहुत इनाम और आर्थिक रूप से हम सुखी थे लेकिन आज हम गाना बाजाना छोड़कर मेहनत मजदूरी कर जीवनयापन कर रहे हैं

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ. रामचन्द्र तिवारी; हिन्दी का गद्य- साहित्य; पृ. 60
2. डॉ. शेफाली चतुर्वेदी; ब्रज लोक साहित्य : नव चिंतन ; पृ. 258
3. डॉ. कुन्दनलाल उप्रेती ; लोकसाहित्य के प्रतिमान; पृ. 309-310
4. डॉ. सत्येंद्र; ब्रज लोकसाहित्य का अध्ययन ; पृ. 5
5. डॉ. सत्येंद्र; लोकवार्ता और लोकगीत ; ब्रज लोक संस्कृति; ब्रज साहित्य मंडल, मथुरा
6. डॉ. सत्येंद्र; लोकसाहित्य विज्ञान; पृ. 4-5
7. सं. राहुल सांकृत्यायन; हिंदी साहित्य का बृहत इतिहास (षोडश भाग) ; पृ. 15-16
8. डॉ. कुन्दनलाल उप्रेती ; लोकसाहित्य के प्रतिमान; पृ. 80
9. वही; पृ. 250
10. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय; भोजपुरी लोकगीत ; पृ. 150
11. डॉ. कुन्दनलाल उप्रेती ; लोकसाहित्य के प्रतिमान; भूमिक से
12. वही; पृ. 305
13. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय; लोकसाहित्य की भूमिका; पृ. 309
14. डॉ. कुन्दनलाल उप्रेती ; लोकसाहित्य के प्रतिमान; पृ. 221
15. वही; पृ. 222
16. वही; पृ. 222
17. वही; पृ. 225
18. वही; पृ. 225
19. वही; पृ. 227
20. डॉ. कुन्दनलाल उप्रेती ; लोकसाहित्य के प्रतिमान; पृ. 309
21. पं. रामनरेश त्रिपाठी; कविता कौमुदी (5वाँ भाग) पृ. 64

उपसंहार

लोकमानव की मौखिक अभिव्यक्ति को लोकसाहित्य संज्ञा से अभिहित किया गया है। मानव को वाणी के वरदान के साथ ही ईश्वर ने ज्ञान के भंडार से मनुष्य को आप्लावित किया, यही ज्ञान की संचित राशि है और ग्रामीण मानव के जीवन का रत्न लोकसाहित्य है। लोकमानव अपने दैनिक क्रिया में घटित सुख-दु:ख की अनुभूतियों को जिसप्रकार प्रकट करता है वही लोकसाहित्य है। वासुदेवशरण अग्रवाल जी ने कहा है कि- "अर्वाचीन मानव के लिए लोक सर्वोच्चय प्रजापति है। लोक, लोक की धात्री सर्वभूत माता पृथिवि और लोक का व्यक्त रूप मानव, यही हमारे नए जीवन का अध्यात्म शस्त्र है।" लोक साहित्य में यथार्थवाद तथा आदर्शवाद का समागम उपलब्ध होता है। लोक साहित्य मनीषियों ने लोकसाहित्य को लोकगीत, लोककथा, लोकगाथा, लोकनाट्य, एवं लोकासुभाषित भागों में विभाजित किया है। लोकगीत सर्वथा चर्चित एवं संपूर्ण विधा है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने ग्राम गीतों के विषय में लिखा है – "भारतीय जनता का स्वरूप पहचानने के लिए पुराने परिचित ग्राम-गीतों की ओर ध्यान देने की आवश्यकता है, केवल पंडितों द्वारा परिवर्तित काव्य का अनुशीलन ही अलम नहीं है। जब-जब शिष्ट काव्य पंडितों द्वारा परिवर्तित काव्य का होगा तब-तब उसे सजीव और चेतन प्रसार देश की सामान्य जनता के बीच स्वच्छंद बहती हुई प्राकृतिक भावधारा से तत्त्व ग्रहण करने से प्राप्त होगा।" वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार "लोकगीत किसी संस्कृति के मुँह बोलते चित्र हैं।" डॉ. कुन्दनलाल उप्रेती ने कहा है कि "लोकसाहित्य का किसी देश-विशेष के जनजीवन के लिए सांस्कृतिक महत्व है। किसी देश का समाज, धर्म, साहित्य, दर्शन, लोकसाहित्य में यथार्थ रूप में सुरक्षित है। इसके अध्ययन से हमें देश-विशेष के राष्ट्रीय जीवन का पूरा चित्र मिलता है।" वासुदेवशरण अग्रवाल का कथन है- "लोकहमारे जीवन का महासमुद्र

है; उसमें भूत, भविष्य, वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है। लोक राष्ट्र का अमर स्वरूप है लोक कृतस्न ज्ञान और सम्पूर्ण अध्ययन में सब शास्त्रों का पर्यवसान है। लोकसाहित्यकारों की लोकसम्पदा के संकलन संघर्ष की कथा कहते हैं

रतीय लोक साहित्य मनीषियों में डॉ. सत्येंद्र, वासुदेव शरण अग्रवाल, आचार्य रामनरेश त्रिपाठी, डॉ. कुन्दनलाल उप्रेती, डॉ. श्याम परमार, डॉ. कृष्ण देव उपादध्याय, डॉ. कुलदीप, डॉ. मोहनलाल मधुकर, डॉ. बापूराव देसाई आदि के कठिन परिश्रम एवं साहस के कारण अप्रकाशित साहित्य संकलित हुआ तथा संरक्षित भी जिसके लिए हम इनके आभारी है।

लोकसाहित्य साहित्यिक साधना की निरंतर बदलती प्रकृति का एक उदाहरण है, जो समय और स्थान की आवश्यकताओं के अनुसार अनुकूलित होता है। लोक साहित्य की विशेषता उन लोगों से होती है जिनसे वह संबंधित है इसलिए इसे जन साहित्य कहना अधिक उचित होगा। लोक साहित्य लोगों की इच्छाओं, आकांक्षाओं, रचनात्मकता और सौंदर्य संबंधी आवेगों से उत्पन्न हुआ है और लोगों के जीवन और अनुभवों से निकटता से जुड़ा हुआ है। भारत में अनूठी संस्कृति है। भारत में लोक साहित्य अधिकांश विषयों, कथाओं और मुद्दों की दृष्टि से प्रगतिशील, क्रांतिकारी और समृद्ध रहा है। विश्व के लोक साहित्य. वस्तुतः भारतीय ग्रन्थ विश्व भर के लोक साहित्य के प्रेरणास्रोत हैं।

इस शोध प्रबंध में नारी को केंद्र में रखकर लोकगीत प्रस्तुत किए गए हैं। लोकगीतों के माध्यम से नारी जीवन की समस्याओं को केंद्र में लाने का प्रयास किया है।नारी अपने दु:ख-सुख, हर्ष-विषाद, अत्याचार, शोषण, दिनचर्या, जीवन की चुनौतियाँ आदि के माध्यम से व्यक्त करती है। महिलाएं प्रेम-विवाह, रोजगार, राजनीतिक या धार्मिक कार्यों में वर्जनाएं, अंध-पुत्रमोह, कन्या भ्रूणहत्या, बालिका-विवाह, बालिका ट्राफिकिंग, अवयस्क मातृत्व, गर्भपात की समस्याएं, विवाह में निर्णय न लेने

की स्थितियाँ, कामकाजी महिलाओं पर भेदभाव,, यौन-शोषण, मानसिक उत्पीड़न आदि समस्यओं का उल्लेख लोकागीतों में मिलता है

शोध प्रबंध में ब्रज लोकगीतों का वर्गीकरण कर संस्कार गीत, शादी-ब्याह के गीत, मौसम एवं माह विशेषक गीत, तीज-त्यौहार के गीत, खेलकूद के गीत, शादी-ब्याह के गीत आदि गीतों को उदाहरण के साथ प्रस्तुत किया हैं। लोकसंगीत का नारी जीवन में अहम भूमिक होती है। नारी को लोकगीतों में साहसी और सशक्त रूप में प्रस्तुत किया है, जिससे यह साबित होता है कि वह अपने जीवन में समस्याओं का समानाधिकारी रूप से सामना करती है। सामाजिक समस्याओं के प्रति जागरूकता लोकगीतों के माध्यम से जिसमें समाज सुधारक गीत समाज में महिलाओं को संघर्ष करते हुए दर्शाते हैं। इस प्रकार लोकगीत नारी के जीवन, संघर्ष, और सशक्तिकरण को प्रस्तुत करते हुए सामाजिक जागरूकता और परिवर्तन का माध्यम बने। लोक साहित्य लोगों की इच्छाओं, आकांक्षाओं, रचनात्मकता और सौंदर्य संबंधी आवेगों से उत्पन्न होता है और इसलिए यह आमजन समुदाय के जीवन और अनुभवों से बारीकी से जुड़ा हुआ है।

इस शोध प्रबंध के माध्यम से ब्रज लोकगीतों के संस्कार गीत, तीज-त्यौहार के गीत,शादी-ब्याह के गीत, ऋतु संबंधी गीत, कृषि संबंधित गीत, श्रम गीत,देवी-देवताओं के गीत आदि का संकलन किया गया है। इसके अतिरिक्त सामाजिक गीतों में समाज सुधारक गीत भी हैं, जिनमें पर्यावरण सुधार और संरक्षण, परिवार नियोजन, बाल-विवाह, दहेज-प्रथा, देश-प्रेम, नारी जागृति, भ्रष्टाचार आदि विषयों पर संकलित लोकगीतों को इस शोध प्रबंध से प्रकाशित किया जा रहा है।

परिशिष्ट

❖ आधार ग्रंथ सूचि

1.	उपाध्याय, डॉ. कृष्णदेव	भोजपुरी लोकसाहित्य; विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, सं 2002 ई.
2.	उपाध्याय, डॉ. कृष्णदेव	लोक साहित्य की भूमिका; साहित्य भवन प्रा. लि. जीरो रोड, इलाहाबाद, सन् 1998 ई.
3.	उप्रेती, कुन्दनलाल	लोकसाहित्य के प्रतिमान; भारत प्रकाशन मंदिर , अलिगढ़ सन् 1971 ई.
4.	परमार, श्याम	भारतीय लोकसाहित्य; राजकमल पब्लिकेशन लिमिटेड, बम्बई, 1954
5.	मधुकर, सं मोहनलाल	ब्रज लोक वैभव; राजस्थान ब्रजभाषा अकादमी, 118 वसुंधरा कॉलोनी, टोंक रोड,जयपुर
6.	मीत्तल, प्रभुदयाल	ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास ; राजकमल प्रकाशन, दिल्ली; सन् 1966
7.	सांकृत्यायन, सं. राहुल/ उपाध्याय, डॉ. कृष्णदेव	हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास (भाग 16); लेखक- डॉ. सत्येंद्र ब्रज लोक साहित्य; काशी नागरी प्रचारिणी सभा; काशी ; प्र. संवत् 2017 ई.
8.	डॉ. सत्येंद्र	ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन ; साहित्य रत्न भण्डार, आगरा ; संस्करण .ई 1949
9.	डॉ. सत्येंद्र	ब्रज लोकसंस्कृति; ब्रज साहित्य मण्डल, मथुरा, सं. 2005 वि.

10. सं. डॉ. सत्येंद्र — ब्रज साहित्य, (कन्हैयालाल पोद्दार अभिनंदन ग्रंथ) अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मण्डल, मथुरा

संदर्भ ग्रंथ सूचि

1.	अग्रवाल, डॉ. कैलाशचंद्र	ब्रज लोकसाहित्य में लोकचेतना और जीवन दर्शन, चिन्मय प्रकाशन, मोतीलाल नेहरू रोड, आगरा, संस्करण प्रथम, सन् 1989 ई.
2.	अली, डॉ. इरशाद	मुस्लिम लोकगीतों का विवेचनात्मक अध्ययन; अनुभव प्रकाशन, कानपुर, प्र. सं. सन् 1985 ई.
3.	अग्रवाल, सं. वासुदेव	साहित्य वाचस्पति सेठ कन्हैयालाल पोद्दार अभिनंदन ग्रंथ; अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मंडल; मथुरा, सं 2010
4.	उप्रेती, कुन्दनलाल	लोकसाहित्य के प्रतिमान; भारत प्रकाशन मंदिर , अलिगढ़ सन् 1971 ई.
5.	उपाध्याय, डॉ. कृष्णदेव	भोजपुरी लोकसाहित्य; विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, सं 2002 ई.
6.	उपाध्याय, डॉ. कृष्णदेव	लोक साहित्य की भूमिका; साहित्य भवन प्रा. लि. जीरो रोड, इलाहाबाद, सन् 1998 ई.
7.	उमरे, डॉ. करुणा	स्त्री-विमर्श: साहित्यिक और व्यवहारिक संदर्भ;अमन प्रकाशन, कानपुर सं. प्रथम सन् 2009
8.	डॉ. कुलदीप	लोकगीतों का विकासात्मक अध्ययन; प्रगति प्रकाशन, बैतुल विल्डिंग, आगरा 3 सन् 1972 ई.
9.	के. पी. प्रेमिला	स्त्री अध्ययन की बुनियाद; राजकमल प्रकाशन दिल्ली, वर्ष 2015
10.	चतुर्वेदी, डॉ. शेफाली	ब्रज लोकसाहित्य : नव चिंतन; कल्पना प्रकाशन; नई दिल्ली, वर्ष 2011

11. चारण, डॉ. सोहनदान — राजस्थानी लोक-साहित्य का सैद्धांतिक विवेचन; राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर

12. जैन, शांति — नारी-जीवन; मंत्री श्री जवाहर साहित्य समिति, बीकानेर राजस्थान, सं. दुसरा, वर्ष 1969

13. जोशी, पं. शिवदयाल — लोकगीतों में रस योजना; इंदु प्रकाशन, अचल तालाब, अलीगढ़, सन् 1985 ई.

14. तिवारी, रामचंद्र — हिंदी का गद्य साहित्य;विश्वविद्यालय प्रकाशन, विशालाक्षी भवन, वाराणसी, उत्तर प्रदेश. सं. एकादश (11), 2016 ई.

15. देसाई, डॉ. बापूराव — लोकसाहित्यशास्त्र; विकास प्रकाशन, बर्रा, कानपुर, उत्तरप्रदेश.सं. प्रथम, वर्ष 2004

16. देसाई, डॉ. बापूराव — भारत की २५ बोलियों का सप्रयोग लोकसाहित्य; गरिमा प्रकाशन, कानपुर, उत्तरप्रदेश सं. प्रथम, वर्ष 2013

17. परमार, श्याम — भारतीय लोक साहित्य; राजकमल पब्लिकेशन लिमिटेड, बम्बई, 1954

18. परमार, श्याम — लोकधर्मी नाट्य परम्परा

19. पचौरी, भगवान सहाय — ब्रज साहित्य का मूल्यांकन; विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, सन् 1971 ई.

20. प्रसाद, सं. माता — लोकगीतों में वेदना और विद्रोह के स्वर; सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, सन् 2007

21. पाण्डेय, मैनेजर — आलोचना की सामाजिकता; वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सन् 2005 ई.

22. पारीक, सूर्यकिरण — राजस्थान के लोकगीत

23.	भाटिया, डॉ. हर्षनंदिनी	ब्रज संस्कृति और साहित्य; ज्ञान गंगा, चावड़ी बाजार, दिल्ली, सं. प्र. सन् 1995 ई.
24.	भ्रमर, डॉ. रवींद्र	हिंदी भक्ति साहित्य में लोकतत्व;भारतीय साहित्य मंदिर, शहदरा, दिल्ली, सं. प्रथम सन् 1965 ई.
25.	मीत्तल, प्रभुदयाल	ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास ; राजकमल प्रकाशन, दिल्ली; सन् 1966 ई.
26.	मनीषा	हम सभ्यऔरतें; सामयिक प्रकाशन, दरियागंज,दिल्ली. सं. प्रथम, सन् 2009
27.	वर्मा, डॉ. धीरेंद्र	ब्रजभाषा; हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, सन् 1954 ई.
28.	वर्मा, डॉ. विमला / सिंह जितेंद्र	ब्रज की लोककलाएं; संस्कृति विभाग, लखनऊ, उत्तरप्रदेश. वर्ष 1995.
29.	वाजपेयी, कृष्णदत्त	ब्रज का इतिहास; अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मण्डल, मथुरा, सन् 1955 ई.
30.	शर्मा, डॉ. मालती	ब्रज के लोक संस्कार गीत; अनुभव प्रकाशन, गाजियाबाद, सं. प्रथम, सन् 2009 ई.
31.	शर्मा, डॉ. कृष्णदेव	लोकसाहित्य : समीक्षा; अशोक प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली, प्रथम संस्करण , सन् 1974 ई.
32.	शर्मा, डॉ. हरद्वारीलाल	लोकवार्ता विज्ञान (भाग- एक और भाग- दो); किताबघर प्रकाशन, अंसारी रोड, दरियागंज, दिल्ली, सं. प्रथम, सन् 2006 ई.
33.	सांकृत्यायन, सं. राहुल/ उपाध्याय, डॉ. कृष्णदेव, लेखक- डॉ. सत्येंद्र	हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास (भाग 16); ब्रज लोक साहित्य; काशी नागरी प्रचारिणी सभा; काशी ; प्र. संवत् 2017 ई.

34.	डॉ. सत्येंद्र	ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन ; साहित्य रत्न भण्डार, आगरा ; संस्करण .ई 1949
35.	डॉ. सत्येंद्र	ब्रज लोकसंस्कृति; ब्रज साहित्य मण्डल, मथुरा, सं. 2005 वि.
36.	डॉ. सत्येंद्र	लोकसाहित्य विज्ञान; शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी (प्रा. लि.), आगरा प्रथम संस्करण, सन् 1962 ई.
37.	डॉ. सत्येंद्र	ब्रज साहित्य का इतिहास; भारती भंडार, लीडर प्रेस इलाहाबाद संवत 2024 वि.
38.	सं. डॉ. सत्येंद्र	ब्रज साहित्य, (कन्हैयालाल पोद्दार अभिनंदन ग्रंथ) अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मण्डल, मथुरा
39.	हरि वियोगी	ब्रज माधुरीसार;हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग. सं. तीसरा, सन् 1939 ई.
40.	त्रिपाठी, रामनरेश	कविता कौमुदी, (भाग-पाँचवाँ), हिंदी- मंदिर, प्रयाग, सं. पाँचवाँ, 1986 ई.

पत्र- पत्रिकाएँ

1.	अग्रवाल, सं. वासुदेवशरण	सम्मेलन पत्रिका (लोकसंस्कृति विशेषांक), 2010
2.	अग्रवाल, सं. वासुदेवशरण	आजकल (लोककथा विशेषांक), मई, सन् 1954 ई.
3.	अग्रवाल, सं. वासुदेवशरण	वरदा (भारतीय संस्कृति में लोक-तत्त्व), जनवरी, 1958 अंक 1
4.	कालिया, सं. रवींद्र	नया ज्ञानोदय, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली.
5.	पचौरी, सं. भगवानसहाय	ब्रज गरिमा, स्वामी प्रकाशन, मथुरा
6.	भारद्वाज, सं. डॉ. शशि	भाषा, (लोक- साहित्य विशेषांक) त्रैमासिक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, नई दिल्ली, जुलाई-अगस्त, सन् 2005 ई.
7.	दीक्षित, सं. डॉ. उमाशंकर	जमुना-जल (त्रैमासिक ब्रज पत्रिका),मथुरा
8.	राय, सं. गुलाब	ब्रज भारती; अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मंडल, मथुरा
9.	राव, सं. बालकृष्ण	हिंदुस्तानी शोध पत्रिका; हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद.
10.	शास्त्री, सं. धर्मदेव	गवेषणा, (त्रैमासिक) केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा

कोश

1. आप्टे, सं. वामन शिवराम	संस्कृत-हिंदी कोश (छात्र संस्करण); नाग प्रकाशन, जवाहर नगर, दिल्ली सन् 1988 ई.
2. वसु, सं. नगेंद्रनाथ	हिंदी विश्व कोश (भाग-20); बी. आर. पब्लिशिंग कोरपोरेशन, दिल्ली, सं. प्रथम सन् 1919.
3. वर्मा, फूलसहाय	हिंदी विश्वकोश(खण्ड-दो)
4. वर्मा, धीरेंद्र	हिंदी साहित्यकोश ज्ञानमण्डल प्रकाशन, वाराणसी, सं. 2020 वि.
6. सं. डॉ. नगेंद्र	मानविकी पारिभाषिक कोश (साहित्य खण्ड) राजकमल प्रकाशन, दिल्ल, सन् 1958 ई.
6. शुक्ल, सं. आचार्य रामचंद्र	हिंदी शब्दसागर (भाग-8) नागरी प्रचारिणी सभा, काशी सन् 1958 ई.